जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2533

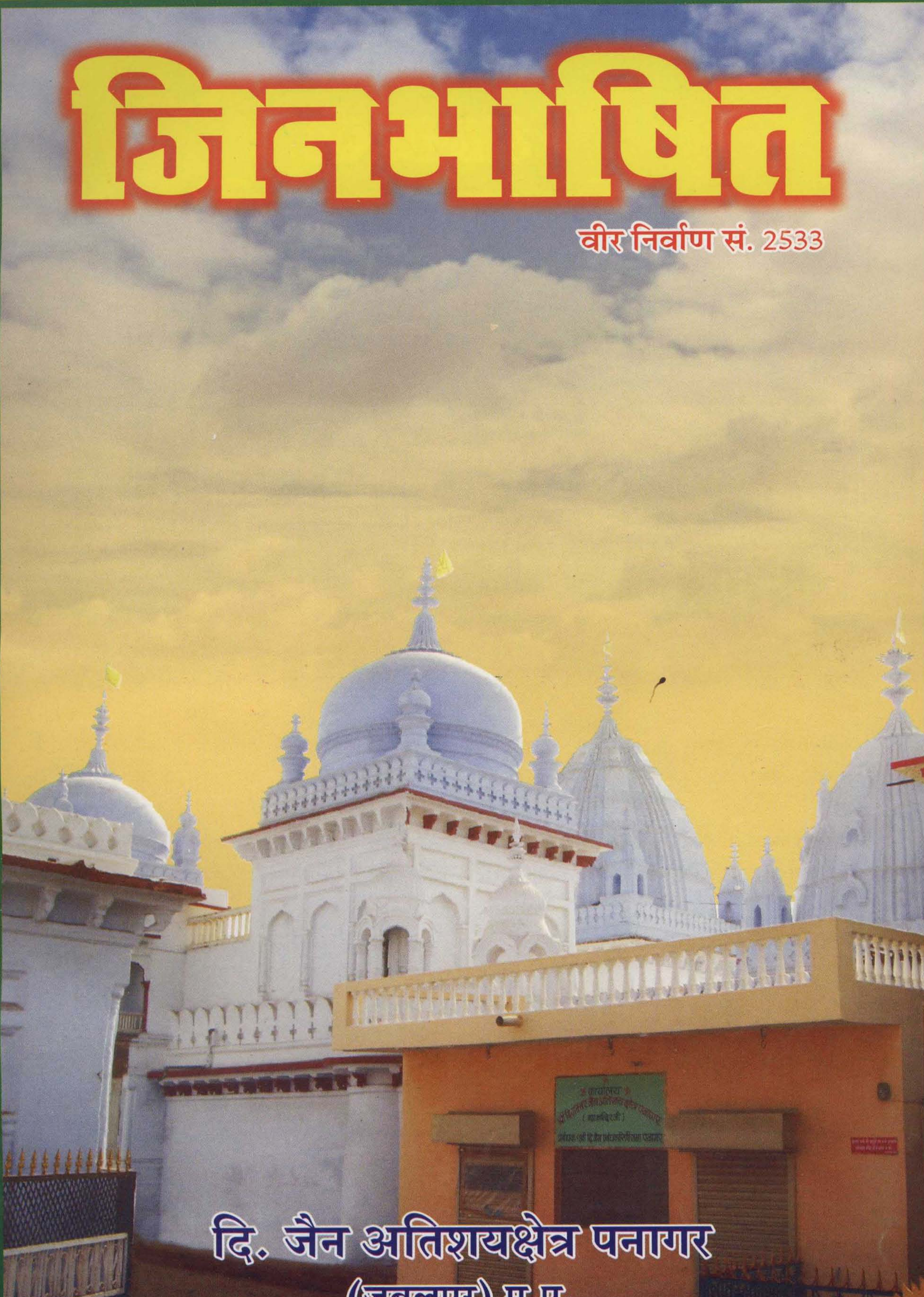

दि. जैन अतिशयक्षेत्र पनागर
(जबलपुर) म.प्र.

फाल्गुन, वि.सं. 2063

फरवरी, 2007

मूल्य 10/

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

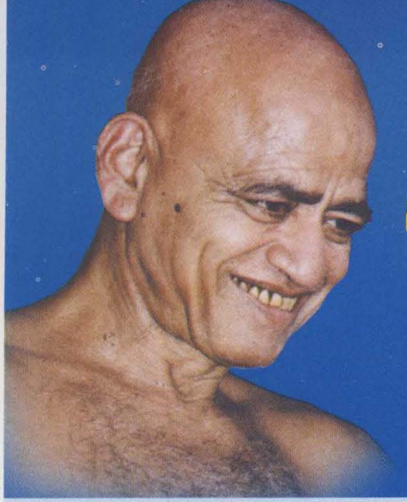

आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे

73
पापत्याग के बाद भी, स्वल्प रहे संस्कार।
झालर बजना बन्द हो, किन्तु रहे झंकार॥

74
राम रहे अविराम निज - में रमते अभिराम।
राम-नाम लेता रहूँ, प्रणाम आठों याम॥

75
चन्दन घिसता चाहता, मात्र गन्ध का दान।
फल की वांछा कब करें, मुनिजन जगकल्याण॥

76
धर्म-ध्यान ना, शुक्ल से, मोक्ष मिले आखीर।
जितना गहरा कूप हो, उतना मीठा नीर॥

77
आकुल व्याकुल कुल रहा, मानव संकुल, कूल-
मिला ना अब तक क्यों मिले, प्रतीति जब प्रतिकूल॥

78
खून ज्ञान, नाखून से, खून-रहित नाखून।
चेतन का संधान तन, तन चेतन से न्यून॥

79
आत्मबोध घर में तनक, रागादिक से पूर।
कम प्रकाश अति धूम्र ले, जलता अरे कपूर॥

80
लँगड़ा भी सुरगिरि चढ़े, चील उड़ें इक पांख।
जले दीप, बिन तेल, ना-घर में अक्षय आँख॥

81
लगाम अंकुश बिन नहीं, हय, गय देते साथ।
व्रत-श्रुत बिन मन कब चले, विनम्र कर के माथ॥

82
भटकी अटकी कब नदी? लौटी कब अधबीच?
रे मन! तू क्यों भटकता? अटका क्यों अघकीच?॥

83
भले कूर्मगति से चलो, चलो कि ध्रुव की ओर।
किन्तु कूर्म के धर्म को, पालो पल-पल और॥

84
भक्त लीन जब ईश में, यूँ कहते ऋषि लोग।
मणि-कांचन का योग ना, मणि-प्रवाल का योग॥

85
खुला खिला हो कमल वह, जब लौं जन-संपर्क।
छूटा सूखा धर्म बिन, नर पशु में ना फर्क॥

86
मन्द-मन्द मुस्कान ले, मानस हंसा होय।
अंश-अंश प्रति अंश में, मुनिवर हंसा मोय॥

87
गोमाता के दुग्धसम, भारत का साहित्य।
शेष देश के क्या कहें, कहने में लालित्य॥

88
उन्नत बनने नत बनो, लघु से राघव होय।
कर्ण बिना भी धर्म से, विजयी पाण्डव होय॥

89
पुनः भस्म पारा बने, मिले खटाई योग।
बनो सिद्ध पर मोह तज, करो शुद्ध उपयोग॥

90
माध्यस्था हो नासिका, प्रमाणिका नय आँख।
पूरक आपस में रहे, कलह मिटे अघ-पाक॥

'सर्वोदयशतक' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

फरवरी 2007 मासिक वर्ष 6, अङ्क 2

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ **आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे** — आ.पृ. 2
- ◆ **स्तवन** : मुनि श्री योगसागर जी — आ.पृ. 4
  - श्री अरहनाथ-स्तवन
  - श्री मल्लिनाथ-स्तवन
- ◆ **सम्पादकीय** : आर्यिकाओं की नवधा भक्ति — 2
- ◆ **लेख**
  - दिगम्बर जैन मुनियों की धार्मिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप पर गाँधी जी का खेद-प्रकाशन : ब्र. शान्तिलाल जैन — 5
  - वर्षायोग : प्राचार्य पं. नरेन्द्र प्रकाश जी जैन — 7
  - भरत-ऐरावत-विदेहक्षेत्रस्थ कर्मभूमियाँ एक अनुशीलन : डॉ. श्रेयांसकुमार जैन — 9
  - साधार है कुण्डलपुर : डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल — 13
  - सरगुजा का जैन पुरातत्त्व वैभव : प्रो. उत्तमचन्द्र जैन गोयल — 21
  - तीर्थंकर पद्मप्रभ एवं नमिनाथ के चिह्नकमलों में भिन्नता : प्रो. (डॉ.) अशोक जैन — 32
- ◆ **काव्य**
  - भरताष्टकम् : मुनि श्री प्रणम्यसागर जी — 23
- ◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा — 24
- ◆ **संस्मरण** :
  - अभय दान : मुनि श्री क्षमासागर जी — 12
  - अबला नहीं सबला : श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी — 20
- ◆ **आपके पत्र** — 27
- ◆ **समाचार** — 8, 26, 29, 30, 31

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
जिनभाषित से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

आर्यिकाओं की नवधा भक्ति

जैन गजट में स्वाध्यायशील विद्वान् श्री कपूरचंद जी पाटनी के पठनीय उपयोगी संपादकीय लेख प्रकाशित होते रहते हैं। वे प्राय: साम्प्रदायिक पक्षपात से रहित होकर आगम प्रमाणों से पोषित रहते हैं। किसी भी पक्षविशेष पर कटाक्ष, व्यंग्य अथवा निदात्मक शब्दों का प्रयोग भी उनके लेखों में नहीं पाया जाता। इस प्रकार एक निष्पक्ष पत्रकार के व्यक्तित्व का दर्शन उनके लेखों में होता है। यद्यपि वैचारिक मतभेद असंभव नहीं है। किन्तु उसके आधार पर मनभेद निर्माण कर निंदात्मक, व्यंग्यात्मक, आलोचना करना प्रकरण के निर्णय एवं पारस्परिक सौहार्द पूर्ण संबंधों में बाधक बन जाते हैं। प्राय: पक्षव्यामोह के अंधकार में हम अनेकांतात्मक सत्य को नहीं देख पाते और निरपेक्ष तर्क का सहारा लेकर अवांछित विवादों में उलझ जाते हैं। मेरे मन में सदैव यह विचार आता है कि क्या हम विवादास्पद विषयों पर आक्षेपात्मक, व्यंगात्मक शब्दों का प्रयोग किए बिना वीतरागभाव से लेख-प्रतिलेख के माध्यम से चर्चा करने के अभ्यासी नहीं बन सकते हैं? प्राय: पक्षपात का भूत हमें दुराग्रही बना देता है और हम अपने पक्ष के अड़ियल समर्थक होते हुए दूसरे पक्ष का निषेध करने में शालीनता की सीमाएँ तोड़ देते हैं।

दिनांक २० जुलाई, २००६ के जैन जगट में 'आर्यिकाओं की नवधाभक्ति आगमसम्मत है' संपादकीय लेख प्रकाशित हुआ है। मैंने ध्यान से पूरा लेख आगम प्रमाण देखने के लिए पढ़ा। पहला प्रमाण मूलाचार की गाथा १८७ का दिया गया है। किन्तु इस गाथा में तो आर्यिकाओं के द्वारा किए जानेवाले समाचार के बारे में कहा है कि वह पूर्व के कहे अनुसार यथायोग्य करना चाहिए। इस गाथा में आर्यिकाओं की नवधा भक्ति का विधान नहीं किया गया है। गाथा में प्रयुक्त **'यथा-योग्य'** शब्द महत्त्वपूर्ण है, जो इस बात पर प्रकाश डालता है कि आर्यिकाओं की शारीरिक संरचना एवं सीमित आत्मशक्ति के कारण वे मुनियों के समान समाचार करने में समर्थ नहीं हैं। इसलिए उन्हें यथायोग्य समाचार विधि आचरित करनी चाहिए। अत: मूलाचार के इस प्रमाण से तो आर्यिकाओं के प्रति पूर्णत: मुनियों के समान नवधाभक्ति किया जाना सिद्ध नहीं होता। बल्कि मूलाचार गाथा ४८२-४८३ में कहा गया है कि विधि अर्थात् नवधाभक्ति से दिया गया आहार साधु अर्थात् मुनि महाराज ग्रहण करें, जिससे यह ध्वनित होता है कि मुनियों को नवधाभक्ति-पूर्वक आहार दिया जाना चाहिए।

कथानक ग्रंथों में आर्यिकाओं की पूजा किए जाने का जो वर्णन मिलता है, उससे अष्टद्रव्य से पूजा किए जाने की बात सिद्ध नहीं होती। नमस्कार, स्तुति, वंदना आदि भी पूजा के ही रूप माने जाते हैं। अष्ट द्रव्य से पूजा के पात्र नव देवता ही होते हैं। स्पष्ट है कि नव देवताओं में आर्यिकाओं का ग्रहण नहीं होता है। इस कारण आर्यिकाएँ अष्ट द्रव्य से पूजा किए जाने की पात्र नहीं ठहरती हैं। अपनी पर्याय से अक्षयपद प्राप्ति, भवातापनाश, अष्टकर्मदहन, मोक्षफल प्राप्ति, अनर्घ्य पद प्राप्ति आदि की योग्यता नहीं रखनेवाली आर्यिकाओं से पूजक उक्त फलप्राप्ति की प्रार्थनाओंवाली पूजा कैसे करेगा? यह भी उल्लेखनीय है कि उपलब्ध प्राचीन प्राकृत, संस्कृत अथवा हिन्दी पूजासंग्रहों में पचंपरमेष्ठी-सहित नव देवताओं की ही पूजायें पायी जाती हैं। कहीं भी किसी आर्यिका की पूजा देखने में नहीं आयी है।

श्री पाटनी जी का यह कथन कि मुनि और आर्यिकाओं में मात्र उत्तर गुणों में अंतर होता है, मूल गुणों में नहीं, प्रत्यक्ष और आगम दोनों के विपरीत है। आर्यिकाओं के अहिंसा महाव्रत, अपरिग्रह महाव्रत, नग्नत्व, स्थिति-भोजन, अस्नान आदि मूल गुण नहीं होते हैं। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि आर्यिकाओं के मुनियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के समान २८ मूल गुण होते हैं। आर्यिकाओं का पांचवाँ संयमासंयम गुणस्थान होता है। अत: उनके संयम नहीं होता हैं। सर्वार्थसिद्धि (नवम अध्याय सूत्र १) की टीका में आचार्य पूज्यपाद लिखते हैं- ''असंयमस्त्रिविध: अनंतानुबंध्याप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानोदयविकल्पात्'' आगे लिखा है-

''प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभानां चतुसृणां प्रकृतीनां प्रत्याख्यानकषायोदयकारणासंयमास्त्रावाणामेकेन्द्रियप्रभृतय: संयतासंयतावसाना बन्धका:।'' असंयम तीन प्रकार का होता है- अनंतानुबंधी के उदय से, अप्रत्याख्यानावरण के उदय से और प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से होने वाला। आर्यिकाओं के प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होता है, इसलिए उनके तीसरे प्रकार का असंयम होता है।

मोक्षपाहुड़ गाथा १२ की टीका में लिखा है- ''स्त्रीणामपि मुक्तिर्न भवति महाव्रताभावात्।'' स्त्रियों के अर्थात् आर्यिकाओं के महाव्रत नहीं होते हैं। प्रवचनसार गाथा २२५ की तात्पर्यवृत्ति में यह प्रश्न उठाया है कि यदि आर्यिकाओं के मोक्ष नहीं है, तो उनके महाव्रतों का आरोप कैसे किया है। इसके समाधान में लिखा है कि उनके महाव्रतों का आरोप उपचार से किया है। कुल (साधुसंघ की) व्यवस्था मात्र के लिए उपचार से महाव्रत कहे जाते हैं। आगे स्पष्ट किया है '**नोपचार: साक्षाद् भवितुमर्हति**' उपचार वास्तविक नहीं होता है। आचारसार में (अध्याय २ श्लोक ८९ में) लिखा है '**देशव्रतान्वितिस्तासामारोप्यन्ते बुधैस्तत:। महाव्रतानि सज्जातिज्ञप्त्यर्थमुपचारत:॥**' देशव्रतों से युक्त आर्यिकाओं में सज्जाति की ज्ञप्ति के लिए उपचार से महाव्रत आरोपित किए जाते हैं। उनके वास्तव में तो देशव्रत ही हैं, उपचार से महाव्रत कहे गए हैं। ऐसे तो ग्रंथों में श्रावकों के भी सामायिक के काल में एवं दिग्व्रत की मर्यादा के क्षेत्र के बाहर उपचार से महाव्रत कहे गए हैं, किंतु जैसे ये वास्तव में महाव्रती नहीं हैं, वैसे ही वास्तव में आर्यिकाएँ भी महाव्रती नहीं हैं।

श्री पाटनी जी ने लेख में आर्यिकाओं के अपनी स्त्रीपर्याय के सर्वोत्कृष्ट संयम होने के कारण नवधा भक्ति किया जाना आवश्यक कहा है, किंतु यह कथन भी आगमसम्मत नहीं है। स्त्रीपर्याय का उत्कृष्ट संयम होते हुए भी वह संयमासंयम ही है, मुनियों के समान सकलसंयम नहीं है। तिर्यंच पर्याय का उत्कृष्ट संयम, देश संयम होने से वह सकल संयम तो नहीं माना जा सकता। पंचम काल के अंत तक आर्यिकाओं का अस्तित्व भी उनकी नवधा भक्ति के औचित्य को सिद्ध नहीं करता। इस प्रकार श्री पाटनी जी वस्तुत: अपने लंबे लेख में आर्यिकाओं की नवधा भक्ति के संबंध में कोई ठोस आगम प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर पाये हैं।

वस्तुत: दिगम्बर जैन मान्यता के मूल तात्त्विक सिद्धांत, जो श्वेताम्बर जैन मान्यता से इसकी भिन्नता सिद्ध करते हैं, वे सवस्त्र-मुक्ति -निषेध, स्त्रीमुक्तिनिषेध एवं केवली-कवलाहार-निषेध है। वस्तुत: दिगम्बर मुनिवेश के रूप में पुरुष और सवस्त्र आर्यिका के रूप में स्त्री की शारीरिक संरचनाओं के आधार पर एवं बाह्य परिग्रह के आधार पर आध्यात्मिक योग्यताओं में भारी गुणात्मक अंतर है और इसीलिए उनके प्रति विनय की अभिव्यक्ति के प्रकार में भी मौलिक अंतर होना ही चाहिए।

आचार्य कुंदकुंद ने तो प्रवचनसार (२२५-८) में कहा है कि सम्यग्दर्शन में शुद्धि, सूत्र का अध्ययन तथा तपश्चरण रूप चारित्र, इनसे संयुक्त भी स्त्री को कर्मों की संपूर्ण निर्जरा नहीं कही है। धवला पु.१/९३/३३३/१ में द्रव्यस्त्री के मुक्ति का निषेध करते हुए हेतु दिया है कि वस्त्रसहित होने से स्त्रियों के संयतासंयत गुण स्थान होता है, अतएव उनके संयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती। आगे कहा है उनके भावसंयम भी नहीं है, क्योंकि भावसंयम मानने पर उनके भावसंयम का विरोधी वस्त्र आदि का ग्रहण करना नहीं बन सकता है। दिगम्बर जैनधर्म के सातिशय प्रभावक आचार्य कुंदकुंद ने सर्वथा आरंभपरिग्रह से विरक्त दिगम्बर मुनि को ही वंदना योग्य बताते हुए शेष वस्त्र धारक साधकों- क्षुल्लक, ऐलक तथा आर्यिकाओं को इच्छाकार के ही योग्य घोषित किया है। महाशास्त्र धवला में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा है कि आर्यिकाओं के वस्त्रसहित होने से संयतासंयत गुणस्थान होता है, अत: उनके संयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती है। उनके चित्त की शुद्धि एवं ध्यान की सिद्धि संभव नहीं है। क्या आचार्य कुंदकुंद के घोषणा-वाक्य '**असंजदं ण वंदे**' तथा '**चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जाय**' आर्यिकाओं की उत्कृष्ट प्रकार की वंदना, नमोऽस्तु अथवा नवधाभक्ति के निषेध का संकेत नहीं देते हैं?

प्रायश्चित्तचूलिका की कारिकासंख्या १२०. निम्न प्रकार है-

याचितायाचिते वस्त्रं भैक्ष्यं च न निषिद्ध्यते।
दोषाकीर्णतयार्याणामप्रासुकविवर्जितम्॥ २०॥

अर्थ- दोषसहित होने से आर्यिकाओं को प्रासुक वस्त्र एवं भोजन याचना करके अथवा बिना याचना के ग्रहण करने का निषेध नहीं है।

इस प्रकार आगम में जहाँ मुनियों के लिए याचना का सर्वथा निषेध है, वहीं आर्यिकाओं के लिए कदाचित् याचना को भी विधेय स्वीकार किया गया है। यह अन्तर मुख्यत: आर्यिकाओं के वस्त्रपरिग्रहसहित होने तथा मुनियों के सर्वथा अपरिग्रही होने के कारण है।

आचार्य कुंदकुंद ने सूत्रपाहुड़ में बताया है कि स्त्रियों की शारीरिक संरचना के कारण अहिंसा की पूर्ण पालना के अभाव में उनकी दीक्षा कैसे हो सकती है? उनकी दृष्टि में संयम की पूर्णता के आधार पर मुनि दीक्षा ही वास्तविक दीक्षा है। प्रवचनसार में कहा है कि स्त्रियों के शरीर के विभिन्न अंगों में सम्मूर्च्छन मनुष्य एवं अन्य जीवों की उत्पत्ति होने के कारण '**तासि कह संजमो होदि?**' उनके संयम कैसे हो सकता है? विवेकी श्रावक को जिस प्रकार योग्य पात्र की योग्य विनय करने में चूक नहीं करनी चाहिए, उसी प्रकार पात्र की विनय में अतिरेक भी नहीं करना चाहिए। आर्यिकाओं की नवधा भक्ति की आगमसम्मतता पर विचार करने के साथ-साथ उसकी तर्कसंगतता पर भी विचार करते हैं। हम देखते हैं कि संयतासंयत नामक पंचम गुणस्थान में स्थित साधकों के प्रति भी विनय-व्यवस्थाओं में अंतर पाया जाता है। जघन्य और मध्यम श्रावक-श्राविकाओं के प्रति जयजिनेन्द्र और उत्कृष्ट श्रावक-श्राविकाओं के प्रति इच्छाकार की पद्धति है। फिर छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती, परमेष्ठी पद में स्थित, सकलसंयमी मुनिराज, और संयतासंयत पंचम गुणस्थानवर्ती आर्यिका के प्रति समाचारों में अवश्य ही अंतर होना चाहिए। उक्त तर्क के आधार से भी आर्यिकाओं की मुनियों के समान नवधा भक्ति उचित नहीं ठहरती है। चौथे-पाँचवें गुणस्थानवर्ती साधकों को उपासक कहा जाता है, उनको कहीं उपास्य नहीं कहा गया है। जबकि मुनिराज परमेष्ठी पद में स्थित होने के कारण उपास्य भी होते हैं। सुधी पाठक विचार करें। विद्वद्जनों से निवेदन है कि आगम का आधार लेकर वीतरागभाव से निष्पक्ष होकर उक्त विषय पर अपने विचार जिज्ञासु पाठकों के समक्ष रखें।

मूलचन्द्र लुहाड़िया

आचार्य श्री विद्यासागर जी की सूक्तियाँ

जैसे दो नेत्रों के माध्यम से मार्ग का ज्ञान होता है, वैसे ही निश्चय और व्यवहार, इन दो नयों के माध्यम से मोक्षमार्ग का ज्ञान होता है।

जैसे नदी के दोनों कूल (किनारे) परस्पर प्रतिकूल होकर भी नदी के लिए अनुकूल हैं, ठीक उसी तरह व्यवहारनय और निश्चयनय एक-दूसरे के प्रतिकूल होते हुए भी आत्मा के प्रमाणज्ञान के लिए अनुकूल हैं।

मुनि श्री समतासागर- संकलित
'सागर बूँद समाय' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बरजैन मुनियों की धार्मिक स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप पर गाँधी जी का खेद-प्रकाशन

ब्र. शान्तिलाल जैन

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने '**नवजीवन**' (31 मई 1931) में एक लेख लिखकर यह विचार व्यक्त किया था कि दिगम्बरजैन मुनियों को नगरों में नग्न अवस्था में प्रवेश नहीं करना चाहिए। गाँधी जी के इस लेख को दिगम्बरजैन पत्रिका '**शोधादर्श**' के सम्पादक महोदय ने मार्च 2005 के अंक में उद्धृत कर गाँधी जी के विचार का समर्थन किया था। कुछ अन्य दिगम्बरजैन लेखकों ने भी उक्त पत्रिका में लेख लिखकर गाँधी जी के उक्त विचार को उचित ठहराया था और दिगम्बरजैन मुनियों को वस्त्रधारण करने की सलाह दी थी। इससे प्रोत्साहित होकर श्वेताम्बरजैन सम्प्रदाय की धार्मिक पत्रिका '**स्थूलभद्र सन्देश**' (मई 2006) ने भी महात्मा जी के उक्त उक्त लेख को '**शोधादर्श**' के सम्पादक की टिप्पणी के साथ उद्धृत किया था, जिसका उद्देश्य यह दर्शाना था कि श्वेताम्बरों की सवस्त्रमुक्ति की मान्यता को महात्मा गाँधी और उक्त दिगम्बरजैन विद्वान् भी उचित मानते हैं।

'**जिनभाषित**' के सम्पादक प्रो० रतनचन्द्र जैन ने दिसम्बर 2006 के अंक में सम्पादकीय लेख लिखकर उपर्युक्त विद्वानों के विचारों को अनेक मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक एवं वर्तमान अश्लील सभ्यतागत युक्तियों और प्रमाणों के द्वारा अनुचित ठहराया था तथा दिगम्बरजैन सिद्धान्त के मर्मज्ञ तथा महान् विधिवेत्ता बैरिस्टर चम्पतराय जी जैन के वे पत्र प्रकाशति किये थे, जो उन्होंने गाँधी जी को उनके '**नवजीवन**' (31 मई 1931) में अभिव्यक्त विचारों के विरोध में लिखे थे। वह पत्र भी प्रकाशित किया था जो गाँधी जी ने बैरिस्टर चम्पतराय जी जैन के पत्र के उत्तर में लिखा था।

आगे चलकर गाँधी जी को बैरिस्टर चम्पतराय जी के तर्क उचित प्रतीत हुए और उन्होंने अपने विचार बदल दिये, जिसे उन्होंने '**नवजीवन**' के एक अंक में स्वीकार किया था। इसका उल्लेख बैरिस्टर चम्पतराय जी ने अपनी पुस्तक 'NUDITY OF JAINA SAINTS' के द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना में, जो 6 मार्च 1932 को लिखी गई थी, किया है। वह इस प्रकार है-

PREFACE TO THE SECOND ADITION

"In Appendix B are given some letters that passed between Mahatma Gandhi and myself on the Subject of the nudity of Jaina Saints. Gandhiji has now cleared up his position in one of the issues of the NAWAJIWAN, where he has expressed distress at the interference with the freedom of the Jaina Saints. The corresponence is, however, valuable as it is likely to clear up certain points and misconceptions in connection with the supject of the tract, and has been incorporated, for this reason, herein."

New Delhi, 6. 3. 32. **C. R. Jain**

अनुवाद- ''एपेण्डिक्स 'बी' में जैन मुनियों की नग्नता के विषय में कुछ पत्र दिये गये हैं, जिनका आदान-प्रदान महात्मा गाँधी और मेरे बीच हुआ था। गाँधी जी ने अब '**नवजीवन**' के एक अंक में अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है, जिसमें उन्होंने जैन मुनियों की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करने पर दुःख व्यक्त किया है। तथापि यह पत्रव्यवहार महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे उन कतिपय बिन्दुओं और भ्रान्त धारणाओं का स्पष्टीकरण एवं निराकरण हो जाता है, जो ट्रैक्ट वे विषय ('जैनमुनियों की नग्नता') से सम्बद्ध हैं, इसी उद्देश्य से उन पत्रों को इस पुस्तक में समाविष्ट किया जा रहा है।''

इससे स्पष्ट हो जाता है कि **राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने दिगम्बर जैन मुनियों के नग्न-अवस्था में नगरों में प्रवेश को उचित और धर्मस्वातन्त्र्य के लोकतांत्रिक सिद्धान्त के अनुरूप स्वीकार कर लिया था।** अत: '**शोधादर्श**' के सम्पादक जी का एवं उसमें प्रकाशित लेखों के लेखकों का गाँधी जी के विचारों का प्रमाण देकर दिगम्बरजैन मुनियों को वस्त्र धारण करने की सलाह देना निराधार सिद्ध हो जाता है। अच्छा होता, वे बैरिस्टर चम्पतराय जी और महात्मा गाँधी जी के बीच हुए पत्र-व्यवहार एवं चम्पतराय जी की उक्त प्रस्तावना को पढ़कर अपने विचार प्रकट करते।

माननीय चम्पतराय जी ने अपनी एक अन्य पुस्तक 'PRACTICAL PATH' में लिखा है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'Such briefly, is the teaching of Jainism, and it is obvious that the whole thing is a chain of links based on the law of Cause and Effect, in other words a perfeclty scientific school of philosophy, and the one most remarkable feature of the system is that it is not possible to remove, or alter, a single link from it without destroying the whole chain at once. It follows from this that jainism is not a religion which may be said to stand in need of periodic additions and improvements or to advance with times, for only that can be enriched by experience which is not perfect at its inception.' (pp. 182-183).

अनुवाद - संक्षेप में यही जैनधर्म की शिक्षा है। और यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण विषय कारण-कार्य-सिद्धान्त पर आधारित विभिन्न कड़ियों की एक शृंखला है। दूसरे शब्दों में यह पूर्णतः वैज्ञानिक दर्शन है। इस दर्शन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग यह है कि इसमें से एक भी कड़ी को न तो इससे हटाया जा सकता है, न बदला जा सकता है, क्योंकि ऐसा करते ही तत्काल सम्पूर्ण शृंखला नष्ट हो जायेगी। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जैनदर्शन ऐसा दर्शन नहीं है, जिसमें समय-समय पर कुछ परिवर्तन की आवश्यकता हो या समय-समय पर सुधार जरूरी हो। ऐसा उसी दर्शन में आवश्यक हो सकता है, जिसका प्रतिपादन करते समय उसमें पूर्णता का ध्यान न रखा गया हो।

श्री चम्पतराय जी के पत्रों में जो तर्क दिये गये हैं, वे इतिहास हैं और समय-समय पर दिगम्बर मुनियों की नग्नता के सम्बन्ध में जो दुष्प्रचार किया जाता है, उसका आगमोक्त समाधान है। परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी को भी एक दार्शनिक ने लँगोटी पहनने को सलाह दी थी। उसे आचार्यश्री ने जो उत्तर दिया था वह पठनीय है। आचार्यश्री के ही शब्दों में वह इस प्रकार है-

"अजमेर की बात है। एक विद्वान् जो दार्शनिक था, वह आया और कहा कि महाराज, आपकी चर्या सारी की सारी बहुत अच्छी लगी, श्लाघनीय है। आपकी साधना भी बहुत अच्छी है, लेकिन एक बात है कि समाज के बीच आप रहते हैं और बुरा नहीं माने तो कह दूँ। हमने कहा भैया, बुरा क्या मानूँगा, जब आप कहने के लिये आये हैं तो बुरा मानने की बात ही नहीं है, मैं बहुत अच्छा मानूँगा और यदि मेरी कमी है, तो मंजूर भी करूँगा। उसने पुनः कहा कि बुरा न मानें, तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि आपको कम से कम एक लँगोटी तो रखनी चाहिए। समाज के बीच आप रहते हैं, उठते-बैठते आहार-विहार-निहार सब करते हैं और आप तो निर्विकार हैं, लेकिन हम लोग रागी है, इसलिए लँगोटी रख लें, तो बहुत अच्छा।

"--- हमने कहा, भइया ऐसा है कि महावीर भगवान् का बाना हमने धारण कर रखा है और इसके माध्यम से महावीर भगवान् कम से कम ढाई हजार वर्ष पहले कैसे थे, यह भी ज्ञान होना चाहिए। तो वे कहने लगे कि महाराज! आप तो निर्विकार हैं, अन्य सभी की दृष्टि से कहा है। मैंने कहा-अच्छा! आप दूसरों की रक्षा के लिये काम कर रहे हैं, तो ऐसा करें कि लँगोटी में तो ज्यादा कपड़ा लगेगा, और भगवान महावीर का यह सिद्धान्त है कि जितना कम परिग्रह हो, उतना अच्छा है। आप एक छोटी सी पट्टी रख लो और जिस समय कोई दिगम्बर साधु सामने आ जाये तो धीरे से आँख पर ढक लें। जो विकारी बनता है, उसे स्वयं अपनी आँख पर पट्टी लगा लेनी चाहिए।" ('समग्र' खण्ड ४/ पृ.१५७-१५८)।

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में हमें आशा करनी चाहिए कि आधुनिक विद्वान् अपने विचारों पर पुनः चिंतन-मनन करेंगे। '**जिनभाषित**' के सम्पादकीय एवं बैरिस्टर चम्पतराय जी के पत्रों से स्पष्ट हो जाता है कि जैन सिद्धान्त शाश्वत है। किसी भी सामाजिक वातावरण में उसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन या संशोधन की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि पर आधारित है एवं पूर्णरूप से वैज्ञानिक है। कोई भी संशोधन या परिवर्तन पूरे सिद्धान्त की वैज्ञानिकता को नष्ट कर देगा। सम्पादकों और विद्वानों से भी अनुरोध है कि अपने विचार प्रकट करने के पहले यह विचार अवश्य करें कि क्या उन्होंने पूरे तथ्यों की खोज-बीन कर ली है और क्या उनके विचार धर्मप्रभावना में सहायक होंगे?

भूतपूर्व चीफ इंजीनियर
म.प्र. विद्युत मण्डल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्षायोग

प्राचार्य पं. नरेन्द्रप्रकाश जी जैन

आगम-ग्रथों में साधु के दस कल्पों का उल्लेख मिलता है। इन दस कल्पों के नाम हैं- अचेलकत्व, उद्दिष्ट आहार-त्याग, सत्याग्रह, राजपिण्ड, कृतिकर्म, व्रत, ज्येष्ठ, प्रतिक्रमण, मासैकवासिता और पद्म। 'पद्म' नामक दसवें स्थितिकल्प में वर्षायोग या चातुर्मास की व्यवस्था समाहित है।

वर्षाऋतु में चारों ओर हरियाली छा जाती है। जमीन हरी-हरी घास से ढक जाती है। मिट्टी की आर्द्रता के कारण अनेक जीव-जन्तु उत्पन्न होने लगते है। जीवहिंसा-विरति के प्रति सतत सावधान साधुगण इन चार महीनों में व्यर्थ गमनागमन नहीं करते। अनियतविहारी होते हुए भी चार माह तक किसी एक ही स्थान पर रह कर आत्मसाधना करते है। यही उनका वर्षायोग या चातुर्मास कहलाता है।

कल्प का अर्थ है- "**या कुशलेन परिणामेन बाह्य-वस्तु-प्रतिसेवना स कल्पः**" अर्थात् कुशल परिणाम से (सावधानी के साथ / विवेकपूर्वक) बाह्य वस्तुओं का जो सेवन किया जाता है, उसका नाम कल्प है। यह एक वीतरागता-पोषक कदम है। साधु जानता है कि राग से कर्म-बंध होता है। इन चार महीनों में उसे बस्ती के लागों के सम्पर्क में निरन्तर रहना पड़ता है। इन सम्पर्कों में भी वह मन से अनासक्त रहने का अभ्यास करता है। इसी को कुशल परिणाम कहते हैं। इससे उसके आत्मबल में वृद्धि होती है।

'वर्षायोग' में जो 'योग' शब्द है, वह बड़े मार्के का है। गणितशास्त्र में योग का अर्थ होता है जोड़ २+२=४। धर्मशास्त्र के अनुसार आत्मा का आत्मा से मिलन योग कहलाता है। सामान्य लोग प्रायः शरीरजीवी होते हैं। वे हमेशा शरीर की अपेक्षा से ही सोचते-विचारते हैं। उनके चिन्तन का रूप है-

मैं सुखी-दुखी, मैं रंक-राव, मेरे धन-गृह-गोधन प्रभाव।
मेरे सुत-तिय मैं सबल-दीन, बेरूप-सुभग मूरख प्रवीन॥
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रकट जे दुःख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन॥

आत्मजीवी साधु का चिन्तन गृहस्थ से भिन्न होता है। वह विचारता है-

जल पय ज्यों जिय तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
त्यों प्रकट जुदे धन-धामा, क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा॥

साधु निरंतर परद्रव्यों से भिन्न अपने आत्मस्वरूप में स्थिर रहने की कोशिश करता रहता है। इस स्थिरता में बाधक तत्व मोह है। उसे जीतने से ही वह निर्मोही कहलाता है। गृहस्थ अपनी मानसिक दुर्बलता या अज्ञान के कारण मोह का शिकार होता रहता है। हाँ, कोशिश करने पर साधु-समागम से उसे मोह को जीतने की प्रेरणा मिलती है।

योग से संयोग और वियोगजन्य दुःखों (अहंकार या आर्तरौद्रध्यानादि) से छुटकारा मिलता है। योग से प्राप्त होने वाला यह सबसे बड़ा लाभ ही है। आगम में कहा है कि वायुरहित स्थान पर जैसे दीपक की लौ अकम्प और ऊर्ध्वगामी रहती है, वैसे ही योग-दशा में परिणाम अचल और उच्चादर्श की ओर उन्मुख रहते हैं

वर्षायोग सद्गृहस्थों को धर्म-साधन के लिए एक अच्छा अवसर प्रदान करता है। उन्हें साधुओं के प्रवचन सुनने, आहार-दान देने, उनकी वैयावृत्ति करने और संयम धारण करने के, अनेक प्रेरक क्षण प्राप्त होते है। इन क्षणों में उनके पुण्य में वृद्धि होती है तथा पाप-भार हलका होता है। जीवन को संस्कारित करने के लिए वर्षायोग एक वरदान के समान है।

आज वर्षायोग ने एक खर्चीले उत्सव का रूप ले लिया है। चातुर्मास का बजट कहीं-कही तो लाखों तक पहुँचने लगा है। जिस बस्ती में निम्न या मध्यम आय-वर्ग के लोग अधिक रहते हैं, उनके लिए इतना खर्च जुटा पाना मुश्किल होता है। अतः वह बस्ती तो किसी साधु के वर्षायोग के सुख से प्रायः वंचित ही रहती है। वर्षायोग में आयोजक चन्दे-चिट्ठे के लिए इतने अधिक निमित्त/बहाने जुटा लेते हैं कि लोग ऊब जाते हैं। बड़े लोग भी कभी-कभी अनमने भाव से चंदा बोलते या लिखते हुए देखे जाते हैं। सामाजिक मान-मर्यादा के नाते वे स्वयं को एक अपरिहार्य विवशता के चक्र में फँसा हुआ अनुभव करते है। कुछ साधुजनों को भी इसमें रस आता है। इससे वर्षायोग का आनन्द भी लोगों के मन में एक कसक सी छोड़ जाता है।

हमने देखा है कि चातुर्मास के लिए किसी संत के पास प्रार्थना करने के लिये जाते समय लोगों के मन में जितना उत्साह और हर्ष रहता है, चातुर्मास शुरू होने के बाद धीरे-धीरे उसमें कमी आने लगती है और एक स्थिति तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसी भी आती है, जब वे वर्षायोग की समाप्ति के लिए एक-एक दिन गिन-गिन कर मन को ढाँढस बँधाते हैं। जहाँ भी ऐसा होता है, उसके कारणों की छानबीन अवश्य की जानी चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि एक दिन वर्षायोग अपनी प्रासंगिकता ही खो बैठे।

साधु और श्रावक दोनों ही अपने-अपने परिणामों को अचंचल और उच्चादर्श की ओर उन्मुख रखने के लिए सतत प्रयत्नशील रहें, तो वर्षायोग निःसंदेह वरदान सिद्ध हो सकेगा। वर्षायोग लोगों को भारस्वरूप न लगने लगे, इस स्थिति को समय रहते टालना आवश्यक है। बाद में पछताने या चिंता करने से कोई लाभ नहीं।

किसी भी वर्षायोग की सफलता के मूल्यांकन के लिए हमें निम्न प्रश्नों का उत्तर तलाशना होगा-

□ साधु-संगति से नित्य देवदर्शन करने, पानी छानकर पीने या भोजन दिन में ही करने के नियम कितने लोगों ने लिए ?

□ व्यसन-मुक्ति की दशा में कितने कदम उठे ? भोगों की ओर चल रही अंधी दौड़ में कुछ कमी आई या नहीं ?

□ समाज में दहेज आदि के नाम पर होनेवाला उत्पीड़न कितना कम हुआ ?

□ परिवार में सास और बहू, ननद और भावज, देवरानी और जेठानी, पुत्र और पिता तथा भाई के बीच कितनी समझदारी बढ़ी अर्थात् इनमें एक-दूसरे के प्रति व्याप्त अविश्वास में कुछ कमी आई या नहीं ?

□ साधर्मीजनों में परस्पर वात्सल्य बढ़ रहा है या मतभेद पहले से भी अधिक गहरे हो रहे हैं ? कषाय का खेल या पार्टीबन्दी ह्रासोन्मुख है या विकासोन्मुख ?

□ चातुर्मास में समाज का जितना पैसा खर्च हो रहा है, उसके सकारात्मक परिणाम भी दिखाई दे रहे हैं या नहीं ? कहीं खानापूरी या लोक-दिखावे के चक्कर में कुछ लोगों के अहं की ही पुष्टि तो नहीं हो रही है ?

□ बच्चों में / नई पीढ़ी में कुछ बदलाव आ रहा है या वही रफ्तार बेढ़ंगी, जो पहले थी, अब भी चल रही है?

आज नहीं तो कल, हमें इन प्रश्नों के महत्त्व को स्वीकार करना ही होगा। नैतिक मूल्यों का दिनों दिन हो रहा क्षरण हमारी साख को दीमक की तरह खोखला कर रहा है। उसे बचाना तभी सम्भव होगा, जब हम वर्षायोग की साख को बचा पायेंगे। आइए, साधु और श्रावक दोनों मिल-बैठकर इस स्थिति पर खुले दिल से चर्चा करें और उत्साह को जीवन्त बनाए रखने के लिए पक्के इरादों के साथ अपने संकल्प की घोषणा करें। संकल्प का निर्णय करते समय इतना अवश्य ध्यान में रहे कि दो नम्बर के पैसे से सम्पन्न होनेवाला वर्षायोग कुशल परिणामों की साधना में बाधक ही बनेगा।

'चिन्तनप्रवाह' से साभार

विद्वद्-विमर्श का प्रकाशन

बुरहानपुर, श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के मुखपत्र-'विद्वद् विमर्श (त्रैमासिक शोध पत्रिका)' का प्रकाशन परिषद् के मंत्री डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन के सम्पादकत्व में किया गया है। पूज्य क्षु. श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी को समर्पित इस पत्रिका में वर्तमान में ज्वलंत विषय-सल्लेखना पर पू. वर्णी जी के विचार, सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री के जैन संघ विषयक विचार, आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सुविचार-सीप के मोती, डॉ. अशोक कुमार जैन (वाराणसी) के मानस अहिंसा-अनेकान्त दृष्टि विषयक विचारों के साथ विद्वत्परिषद् की रीति-नीति, गतिविधियों, पारित प्रस्तावों आदि की सुन्दरतम जानकारी समाहित की गई है। ८० पृष्ठीय इस पत्रिका का आगामी अंक भगवान महावीर जयन्ती विशेषांक शोधखोजपूर्ण सामग्री के साथ प्रकाशित किया जायेगा। पत्रिका का वार्षिक शुल्क एक सौ रुपये निर्धारित किया गया है। शोधपूर्ण आलेख, समाचार एवं शुल्क भेजकर पत्रिका मँगाने हेतु- डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन, मंत्री-अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्, कार्यालय-एल ६५, न्यू इन्दिरा नगर, बुरहानुपुर- ४५०३३१

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरत-ऐरावत-विदेहक्षेत्रस्थ कर्मभूमियाँ : एक अनुशीलन

डॉ. श्रेयांस कुमार जैन

शाश्वत लोक के जिस भाग में जीवों का निवास है, वह भूमि है। यह भूमि भोगभूमि और कर्मभूमि के रूप में शास्त्रकारों द्वारा वर्णित की गयी है। जहाँ भोगो की प्रधानता रहती है वह भोगभूमि नाम से जानी जाती है और जहाँ कर्म की प्रधानता होती है वह कर्मभूमि कही जाती है। आचार्य पूज्यपाद कर्मभूमि के विषय में लिखते हैं- ''जिसमें शुभ और अशुभ कर्मों का आश्रय हो, उसे कर्मभूमि कहते हैं। यद्यपि तीनों लोक में कर्म का आश्रय है फिर भी जिससे उत्कृष्टता का ज्ञान होता है कि इसमें प्रकृष्टरूप से कर्म का आश्रय है। सातवें नरक को प्राप्त करने वाले अशुभ कर्मों का भरतादि क्षेत्रों में ही अर्जन किया जाता है। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धि आदि विशेषस्थान को प्राप्त करने का पुण्य कर्म का उपार्जन भी यहीं होता है तथा पात्र दानादि के साथ कृषि आदि छह प्रकार के कर्म का आरम्भ यहीं पर होता है। इसलिए भरतादि को कर्मभूमि का क्षेत्र जानना चाहिए।''[१] यही तथ्य भट्टाकलंकदेव ने प्रस्तुत किया है।[२] आचार्य अपराजितसूरि कर्मभूमि के विषय में लिखते हैं जहाँ असि-शस्त्र धारणकरना, मषि-बहीखाता आदि लेखन कार्य करना, कृषि-खेती करना, पशु पालना, शिल्पकर्म करना अर्थात् हस्त कौशल के काम करना, वाणिज्य-व्यापार करना, व्यवहारिता न्यायदान का कार्य करना ऐसे छह कार्यों से जहाँ उपजीविका चलायी जाती है। जहाँ संयम पालनकर मनुष्य तप करने में तत्पर होते हैं, जहाँ मुनष्यों को पुण्य की विशेष प्राप्ति होती है, जिससे स्वर्ग मिलता है। जहाँ कर्म को नष्ट करने की योग्यता मिलती है, जिससे मुक्तिलाभ होता है। ऐसे स्थान को कर्मभूमि कहा जाता है।[३] भास्करनन्दि ने कर्म से अधिष्ठित भूमियों की कर्मभूमि संज्ञा मानी है।[४]

भरत, ऐरावत और विदेह में कर्मभूमि होती है क्योंकि इन्हीं क्षेत्रों से मुक्ति होती है। जैनाचार्य इसको सहेतु स्पष्ट करते हैं- मानुषोत्तर पर्वत के इस भाग में अढ़ाई द्वीप प्रमाण मनुष्यक्षेत्र है। इन अढ़ाई द्वीपों में पाँच सुमेरू हैं। एक-एक सुमेरू के भरत, ऐरावत आदि सात-सात क्षेत्र हैं जिनमें भरत ऐरावत और विदेह ये तीन कर्मभूमियाँ हैं। इसप्रकार पांच मेरू सम्बन्धी पन्द्रह कर्मभूमियाँ हैं। यदि पाँचों विदेहों के बत्तीस-बत्तीस क्षेत्रों की भी गणना की जाय तो पाँच भरत, पाँच ऐरावत और 160 विदेह इस प्रकार कुल 170 कर्मभूमियाँ होती हैं। विदेह की संख्या 160 किस प्रकार से है उसी को भट्टाकलंकदेव ने समझाया है कि विदेहक्षेत्र निषध और नील पर्वतों के अन्तराल में है। इसके बहुमध्यभाग में एक सुमेरू व चार गजदन्त पर्वत हैं। इनसे रोका गया भूखण्ड उत्तरकुरु व देवकुरु कहलाते हैं। इनके पूर्व व पश्चिम में स्थित क्षेत्रों को पूर्वविदेह और पश्चिमविदेह कहते हैं। यह दोनों ही विदेह चार-चार वक्षारगिरियों, तीन-तीन विभंगा नदियों और सीता सीतोदा नाम की महानदियों द्वारा सोलह-सोलह देशों में विभाजित कर दिये गये हैं। इन्हें ही बत्तीस विदेह कहा जाता है, ये एक-एक मेरू सम्बन्धी बत्तीस-बत्तीस विदेह हैं। पाँच मेरूओं के मिलकर कुल 160 विदेह हैं।[५] इन भूमियों की कर्मभूमि संज्ञा का निर्णायक हेतु ''भरतैरावत-विदेहा: कर्मभूमयोऽन्यत्रदेवकुरुत्तरकुरुभ्य:'' यह तत्त्वार्थसूत्र के तृतीय अध्याय का सैतीसवां सूत्र हैं। इससे स्पष्ट है कि भरत, ऐरावत और विदेह ये कर्मभूमियाँ हैं। इस सूत्र में अन्यत्र पद रखकर आचार्य श्री उमास्वामी ने इस शंका का निवारण कर दिया जो केवल विदेह शब्द रखने से उत्पन्न हो सकती थी। यदि अन्यत्र पद न रखते तो देवकुरु उत्तरकुरु भी कर्मभूमियों में परिगणित होतीं। अत: इनका निषेध करने के लिए अन्यत्र देवकुरुत्तर कुरुभ्य: ऐसा सूत्र में वाक्य कहा है।

भरत, ऐरावत और विदेह तीनों क्षेत्रों में कर्मभूमियों को बताया गया है अत: इन क्षेत्रों के नाम और विशेषताओं पर भी विचार पहिले करके कर्मभूमि के वैशिष्ट्य को भी दर्शाया जायेगा।

भरतक्षेत्र संज्ञा भरत क्षत्रिय के योग से पड़ी है। भट्टाकलंकदेव लिखते हैं[६] विजयार्ध पर्वत से दक्षिण लवणसमुद्र से उत्तर और गंगा सिन्धु नदी के मध्यभाग में बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी विनीता नामक नगरी है उसमें सर्वलक्षणों से सम्पन्न भरत नाम का षटखण्डाधिपति चक्रवर्ती हुआ है। इस अवसर्पिणी के राज्य विभाग काल में उसने ही सर्वप्रथम इस क्षेत्र का उपयोग किया था। इसलिए उसके अनुशासन के कारण इस क्षेत्र का नाम भरतक्षेत्र पड़ा है अथवा यह भरत संज्ञा अनादिकालीन है अथवा यह संसार अनादि होने से अहेतुक है। इसलिए 'भरत' यह नाम अनादि सम्बन्ध पारिणामिक है अर्थात् बिना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी कारण के स्वाभाविक है।[७]

चक्रवर्ती भरत के नाम से भरतक्षेत्र संज्ञा सार्थक प्रतीत नहीं होती। अनादिकालीन संज्ञा विषयक कथन सार्थक और युक्ति युक्त है।

भरतक्षेत्र में कल्पवृक्षों के नष्ट होने पर कर्मभूमि प्रकट हुई।[८] इन्द्र ने अयोध्यापुरी के बीच में जिनमन्दिर की स्थापना की थी। इसके बाद चारों दिशाओं में भी जिनमन्दिरों की स्थापना की गई थी। अनन्तर देश, महादेश, नगर, वन, सीमासहित गाँव और खेड़ों आदि की रचना की गई थी।[९] कर्मभूमि आने पर भरतक्षेत्र में शलाकापुरुषों की उत्पत्ति शुरू होती है जैसा आचार्य यतिवृषभ लिखते भी हैं- पुण्योदय से भरतक्षेत्र में मनुष्यों में श्रेष्ठ और सम्पूर्णलोक में प्रसिद्ध तिरेसठ शलाकापुरुष उत्पन्न होने लगते हैं। ये शलाकापुरुष २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९बलभद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण इन नामों से प्रसिद्ध हैं।[१०] दिव्यपुरुष भी कर्मभूमि में ही जन्मते हैं यह २४ तीर्थंकर, इनके गुरु (तीर्थंकरों के २४ पिता और २४ माताएँ) १२ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण, ११ रुद्र, ९ नारद, २४ कामदेव, १४ कुलकर, ९ प्रतिनारायण, सब मिलकर १६९ हैं।[११] भरतक्षेत्र की कर्मभूमि की विशेषता रही है कि इसमें वंशोत्पत्ति हुई है। ऋषभदेव ने हरि, अकम्पन, काश्यप और सोमप्रभ नामक महाक्षत्रियों को बुलाकर उनको महामण्डलेश्वर बनाया। तदनन्तर सोमप्रभ राजा भगवान् से कुरुराज नाम पाकर कुरुवंश का शिरोमणि हुआ। हरि भगवान् से हरिकान्त नाम पाकर हरिवंश को अलंकृत करने लगा क्योंकि वह हरि पराक्रम में इन्द्र अथवा सिंह के समान पराक्रमी था। अकम्पन भी भगवान् से श्रीधर नाम प्राप्तकर नाथवंश का नायक हुआ। कश्यप भगवान् से मघवा नाम पाकर उग्रवंश का प्रमुख हुआ। उस समय भगवान् ने मनुष्यों को इक्षु का रस संग्रह करने का उपदेश दिया था इसलिए जगत के लोग उन्हें इक्ष्वांकु कहने लगे।[१२] सर्वप्रथम भगवान् आदिनाथ से इक्षवांकुवंश प्रारम्भ हुआ पीछे इसकी दो शाखाएँ हो गई। एक सूर्यवंश दूसरी चन्द्रवंश।[१३] सूर्यवंश की शाखा भरत चक्रवर्ती के पुत्र अर्ककीर्ति से प्रारम्भ हुई क्योंकि अर्कनाम सूर्य का है।[१४] इस सर्यवंश का नाम ही सर्वत्र इक्ष्वांकुवंश प्रचलित है। चन्द्रवंश की शाखा बाहुबली के पुत्र सोमयश से प्रारम्भ हुई।[१५] इसी का नाम सोमवंश भी है क्योंकि सोम और चन्द्र एकार्थवाची हैं।

भरतक्षेत्र में कर्मभूमि के आने के बाद ही वंश, जाति, कुल आदि परम्पराओं के उद्भव के साथ महापुरुष हुए जो मोक्ष के अधिकारी थे। यहाँ भगवान् ऋषभदेव ने प्रजा को असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य, शिल्प इन छह कर्मों का उपदेश दिया।[१६] सम्पूर्ण प्रजा ने भगवान को श्रेष्ठ जानकर राजा बनाया। राज्य पाकर भगवान् ने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों की स्थापना की। छह कर्मों की व्यवस्था होने से कर्मभूमि कहलाने लगी। विवाह की परिपाटी भी कर्मभूमि से प्रारम्भ हुई। भगवान् ऋषभदेव का यशस्वती और नन्दा से विवाह हुआ। मोक्षमार्ग का प्रवर्तन हुआ। कर्मभूमि में रूढ़ि से चली अपनी जाति की कन्या के साथ विवाह होने पर और उससे उत्पन्न सन्तान से ही मोक्षमार्ग चलता है। जैसा कि कहा भी गया है- ''देव-शास्त्र-गुरु को नमस्कार कर तथा भाई बन्धुओं की साक्षीपूर्वक जिस कन्या के साथ विवाह किया जाता है'' वह विवाहिता स्त्री है। विवाहिता दो प्रकार की है एक तो कर्मभूमि में रूढ़ि से चली आई अपनी जाति की कन्या के साथ विवाह करना और दूसरी अन्य जाति की कन्या से विवाह करना। अपनी जाति की कन्या से विवाह की गई स्त्री धर्मपत्नी। दूसरी जाति की भोग पत्नी। धर्मपत्नी के पुत्र को उत्तराधिकार मिलता है वही मोक्ष का अधिकारी भी है।[१७]

कर्मभूमिज मनुष्यों में विवाह होते हैं और उनके सद गृहस्थ धर्म का पालन भी होता है। कर्मभूमि की स्त्रियों के अन्त के तीन संहनन नियम से होते हैं तथ्य आदि के तीन संहनन नहीं होते हैं ऐसा जिनेन्द्रदेव का कथन है।[१८] हीनसंहनन और रागबाहुल्य के कारण वें मुक्ति को प्राप्त नहीं होतीं।

कर्मभूमियों में आर्य और म्लेच्छ दोनों प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं। गुण अथवा गुणवानों के द्वारा जो प्राप्त हैं, सेवित होते हैं, वे आर्य कहलाते हैं। उससे विपरीत लक्षण वाले गुणवानों से सेवित नहीं हैं, उन्हें म्लेच्छ कहा गया है। आर्य दो प्रकार के होते हैं ऋद्धिप्राप्त आर्य और ऋद्धिरहित आर्य। ऋद्धिप्राप्त आर्य सात प्रकार के हैं। बुद्धि, तप, विक्रिया औषध, बल, रस और क्षेत्रर्द्धि ये ऋद्धियाँ हैं। इनसे सम्पन्न मुनि ऋद्धिप्राप्त आर्य कहे गये हैं। ऋद्धि रहित आर्य पाँच प्रकार के हैं जात्यार्य, क्षेत्रार्य, कर्मार्य, दर्शनार्य और चारित्रार्य। इक्ष्वाकु आदिवंशज मनुष्य जात्यार्य हैं। आर्यक्षेत्र में उत्पन्न होने की अपेक्षा क्षेत्रार्य हैं। जिनकी कर्मक्रिया श्रेष्ठ है वे कर्मार्य हैं। सम्यक्त्वयुक्त मनुष्य दर्शनार्य हैं। संयमधारी मनुष्य चारित्रार्य हैं। कर्मभूमि में रहने वाले चारित्र के माध्यम से ही ऊँचे उठते हैं। यदि और सम्पदाएँ प्रचुर मात्रा में भी हों किन्तु चारित्र नहीं हो तो ''संपदो नैव सम्पद:'' सम्पदाएँ वास्तव में सम्पदत्व की अधिकारिणी नहीं कही जा सकती हैं। इसप्रकार मनुष्य के भीतर उत्कर्षों का मान भी चारित्र द्वारा ही स्थापित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। यह सब कर्मभूमि का माहात्म्य है। यदि असत्-पदार्थों का सेवन करते हैं तो नरकायु का बन्ध करते हैं।[१९]

विदेहक्षेत्र निषध और नील के मध्य में स्थित है अर्थात् निषध से उत्तर नील पर्वत से दक्षिण और पूर्वापर समुद्रों के मध्य में विदेहक्षेत्र की रचना है। अढ़ाईद्वीप सम्बन्धी पाँच मेरूओं के साथ पाँच भरत और पाँच ऐरावत समान ही पाँच विदेह हैं जिनको १६० नगरियों में विभक्त कर वर्णन किया है। उन सभी में भी पाँच-पाँच म्लेच्छ खण्ड तथा एक- एक आर्य खण्ड स्थित है। सभी विदेहों के आर्य खण्डों में सदा दुषमा-सुषमा काल वर्तता है। सभी म्लेच्छ खण्डों में दुषमा-सुषमा काल होता है। सभी विजयार्धों पर विद्याधरों की नगरियाँ हैं, उनमें सदैव दुषमा-सुषमा काल होता है। विदेह के आर्यखण्डों में उत्कृष्टरूप से चौदह गुणस्थान तक पाये जाते हैं और जघन्यरूप से चार गुणस्थान तक होते हैं।[२०] सभी म्लेच्छों में एक मिथ्यात्वगुणस्थान ही रहता है।[२१] रत्नत्रय की योग्यता आर्यखण्ड के मनुष्यों में ही पायी जाती है।[२२] असंयम मनुष्य पर्याप्त अपर्याप्त दोनों होते है।[२३] विदेहक्षेत्र के सभी देशों में अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूसा, टिड्डू, चिडिया, स्वचक्र (अपनी सेना), परचक्र (पर की सेना) ये सात प्रकार की ईतियाँ नहीं होती हैं। रोगमरी आदि भी नहीं होती हैं। कुदेव, कुलिंगी और कुमति वहाँ नहीं पाये जाते हैं। केवलज्ञानी तीर्थंकरादि शलाकापुरुषों और ऋद्धिधारी साधुओं की सदा सत्ता रहती हैं। तीर्थंकर अधिक से अधिक हों तो प्रत्येक देश में एक-एक ही होते है। कम से कम सीता और सीतोदा नदी के दक्षिण और उत्तर में एक एक अवश्य होते हैं। इसप्रकार प्रत्येक विदेह में कम से कम चार होने से पाँच विदेह के २० अवश्य होते हैं।[२४] यही कारण है कि यहाँ (विदेहक्षेत्र में) सतत धर्मोच्छेद का अभाव है अर्थात् धर्म की धारा अविच्छिन्नरूप से बहती है। सदा विदेहीजन (अर्हन्त) होने से ही इसकी विदेहसंज्ञा सार्थक हैं।

विदेहक्षेत्रों में मनुष्यों की आयु संख्यातवर्ष की होती हैं। शरीर की ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण की होती है। वे नित्य भोजन करते हैं।[२५] उनकी उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व और जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है। विदेहक्षेत्र में कर्मभूमि का निरन्तर प्रवर्तन रहने के कारण सुख दुःख की मिश्रित स्थिति पायी जाती हैं।[२६] तिर्यंचों की भी यही स्थिति होती हैं।[२७] यहाँ के मनुष्य और तिर्यंच सम्यक्त्व सहित अवस्था में देवायु का आस्रव करते हैं, मिथ्यात्व अवस्था में विपरीत कार्य करने से, खोटी क्रियाएँ करने से तिर्यंच का भी आस्त्रव करते हैं और सरल स्वभाव आदि से मनुष्यायु का भी आस्रव करते हैं।[२८]

ऐरावत क्षत्रिय के योग से ऐरावत नाम पड़ा। शिखरी पर्वत और पूर्व, पश्चिम और उत्तर तीनों समुद्रों के मध्य ऐरावत क्षेत्र है। सम्पूर्ण रचना भरतक्षेत्र के समान है किन्तु विजयार्द्धपर्वत और रक्ता रक्तोदा नदी के कारण छह खण्डों में विभक्त है। आयु, शरीर की ऊँचाई आदि भरत क्षेत्र के समान हैं। षट्कालपरिवर्तन होता है। कर्मभूमि भी समान है।

भरत, ऐरावत, विदेहक्षेत्रस्थ कर्मभूमिज अबद्धायुष्क मनुष्य ही क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्रस्थापना व निष्ठापना कर सकता है किन्तु भोगभूमि में क्षायिक सम्यग्दर्शन की निष्ठापना हो सकती है, प्रस्थापना नहीं।[२९]

अन्य अनेक विशेषताएँ हैं जो कर्मभूमि में पायी जाती हैं जैसे विकलेन्द्रिय व जलचर जीव नियम से कर्मभूमिज होते हैं। विजयार्द्ध पर्वत के निवासी मानव यद्यपि भरतक्षेत्र के मानवों के समान षट्कर्मों से ही आजीविका करते हैं परन्तु प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं के धारण करने के कारण विद्याधर कहे जाते हैं यह उनकी विशेषता है।

भरत, ऐरावत और विदेह के अतिरिक्त स्वयंभूरमणद्वीप का आधा भाग और स्वयंभूरमण समुद्र भी कर्मभूमि के अन्तर्गत आता है। इसको विशेषरूप से इसप्रकार समझना चाहिए कि स्वयंभूरमण समुद्र के पहिले स्वयंभूरमणद्वीप आता है। इस द्वीप के बहुमध्यभाग में मानुषोत्तर पर्वत के समान वलयाकृति स्वयंप्रभनाम का पर्वत है। इसके कारण स्वयंभूरमणद्वीप के दो भाग होते हैं उसके प्रथम (उरले) भाग से लेकर मानुषोत्तर पर्वत तक भोगभूमियाँ हैं। उनमें चार गुणस्थान वाले तिर्यंच जीव होते हैं। पंचम गुणस्थान व्रतियों के ही होता है और व्रतों को कर्मभूमियाँ ही ग्रहणकर सकते हैं अन्य नहीं। कर्मभूमियाँ जीव ही इतना पाप बन्ध कर सकता जिससे उसे सप्तम नरक भी जाना पड़ता है। स्वयंभूरमण नामक अन्तिम समुद्र में होने वाले मत्स्य को मारकर सप्तम नरक मिलने का कथन संगत होता है।

भरत, ऐरावत में षट्कालपरिवर्तन होने से भोगभूमि और कर्मभूमि दोनों पाई जाती हैं। काल की स्थिरता न होने के कारण ईति-भीतियाँ होती हैं। विदेहक्षेत्र में काल की स्थिरता होने से ईति भीति आदि नहीं होती है। सामान्य व्यवस्थाएँ तीनों क्षेत्रों में समान हैं। कर्मभूमि संयम और निर्वाण की साधिका होने के कारण भोगभूमि की अपेक्षा श्रेष्ठ है। यहाँ जीवों में पुरुषार्थ की विशेषता होती है, वही उपादेय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. सर्वार्थसिद्धि ३/३७पृ. २३२।
२. तत्त्वार्थवार्तिक भाग १। पृ. २०४-०५
३. भगवती आराधना ७८१ विजयोदया टीका पृ. ९३६।
४. कथं भरतादीनां पंचदशानां कर्मभूमित्वमिति चेत्प्रकृष्टस्य शुभाशुभ कर्मणोऽधिष्ठानत्वादिति ब्रूमः। सप्तमनरकप्रापणस्याशुभस्य कर्मणः सर्वार्थसिद्ध्यादिप्रापणस्य शुभस्य च कर्मणो भरतादिष्वेवोपार्जनम्। कृष्यादि कर्मणः पात्रदानादियुक्तस्य तत्रैवारम्भात्। तन्निमित्तस्यात्मविशेष परिणामविशेषस्यैतत्क्षेत्रविशेषाप्रेक्षत्त्वात्कर्मणाधिष्ठिता भूभयः कर्मभूभय इति संज्ञायन्ते॥ तत्वार्थवृत्ति भास्करनन्दि कृत सुखबोधा टीका पृ. १८१।
५. विजयार्द्ध पर्वत ५० योजन विस्तार वाला २५ योजन उत्सेंध वाला है। एक कोष छह योजन जड़ वाला भाग है। पूर्व पश्चिम की तरफ से यह लवण समुद्र का स्पर्श करता है। चक्रवर्ती के विजयक्षेत्र की अर्धसीमा इस पर्वत से निर्धारित होती है। अतः इसका नाम विजयार्द्ध है। इसके नीचे तमिसा और खण्डप्रताप नामक दो गुफायें हैं। दोनों के दरवाजों से चक्रवर्ती विजय के लिए जाता है। इन्हीं गुफाओं के द्वारों से गंगा सिन्धु मिलती हैं।
६. तत्त्वार्थवार्तिक ३/१०/११
७. तत्त्वार्थवार्तिक ३/१०/११
८. महापुराण १६/१४६
९. महापुराण १६/१५१
१०. तिलोयपण्णत्ती ४/५१०-११ त्रिलोकसार ८०३
११. तिलोयपण्णत्ती ४/१४७३
१२. महापुराण १६/२५८-२९४
१३. हरिवंशपुराण १३/३३
१४. पद्मपुराण ५/४
१५. हरिवंशपुराण १३/१६
१६. महापुराण १६/१७८-१७९
१७. लाटी संहिता १७८-२०८
१८. अंतिम तिगसंघडणं णियमेण च कम्मभूमिमहिलाणं
आदिम् तिगसंघडणं णत्थित्ति जिणेहिं णिदि्दं॥
उद्धृत प्रवचनसार २२४-८
१९. मधुमांससुराहारमानुषः कर्मभूमिजाः।
तिर्यंचो व्याघ्रसिंहाद्या बन्धका नारकायुषः॥ प्र. सर्ग॥
२ हरिवंशपुराण
२०. तिलोयपण्णत्ती २९३६
२१. तिलोयपण्णत्ती २९३७
२२. भगवती आराधना ७८१
२३. गोम्मटसार जीवकाण्ड ७०३
२४. त्रिलोकसार ६८०-६८१
२५. तत्त्वार्थवार्तिक ३/३१ (पृ.५३३ प्र.भा.आ. सुपार्श्वमती कृत टीका)
२६. तिलोयपण्णत्ती ४/२-९५४
२७. तिलोयपण्णत्ती ५/२९२
२८. सर्वार्थसिद्धि ६/१६ पृ. ३३४
२९. गोम्मटसार कर्मकाण्ड ५५०

अभय-दान

चातुर्मास स्थापना का समय समीप आ गया था। सभी की भावना थी कि इस बार आचार्य महाराज नैनागिरि में ही वर्षाकाल व्यतीत करें। वैसे नैनागिरि के आसपास डाकुओं का भय बना रहता था, पर लोगों को विश्वास था कि आचार्य महाराज के रहने से सब काम निर्भयता से सानन्द सम्पन्न होंगे। सभी की भावना साकार हुई। चातुर्मास की स्थापना हो गई।

एक दिन हमेशा की तरह जब आचार्य महाराज आहार-चर्या से लौटकर पर्वत की ओर जा रहे थे तब रास्ते में समीप के जंगल से निकलकर चार डाकू उनके पीछे-पीछे पर्वत की ओर बढ़ने लगे। सभी के मुख वस्त्रों से ढँके हुए थे, हाथ में बंदूकें थीं। लोगों को थोड़ा भय लगा, पर आचार्य महाराज सहज भाव से आगे बढ़ते गए। मन्दिर में पहुँचकर दर्शन के उपरान्त सभी लोग बैठ गए। आचार्य महाराज के मुख पर बिखरी मुस्कान और सब ओर फैली निर्भयता व आत्मीयता देखकर वह डाकुओं का दल चकित हुआ। सभी ने बंदूकें उतारकर एक ओर रख दीं और आचार्य महाराज की शान्त मुद्रा के समक्ष नतमस्तक हो गए।

आचार्य महाराज ने आशीष देते हुए कहा कि 'निर्भय होओ और सभी लोगों को निर्भय करो। हम यहाँ चार माह रहेंगे, चाहो तो सच्चाई के मार्ग पर चल सकते हो।' वे सब सुनते रहे, फिर झुककर विनतभाव से प्रणाम करके धीरे-धीरे लौट गए।

फिर लोगों को नैनागिरि आने में जरा भी भय नहीं लगा।

वहाँ किसी के साथ कोई दुर्घटना भी नहीं हुई। आचार्य महाराज की छाया में सभी को अभय-दान मिला।

नैनागिरि (१९७८)

मुनि श्री क्षमासागरकृत 'आत्मान्वेषी' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधार है कुण्डलपुर

डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल

श्री अजीत टोंग्या का आलेख 'अधर में कुण्डलपुर' जैन गजट दि. १२/१०/२००६, १९/१०/२००६ एवं २/११/२००६ में प्रकाशित हुआ है जो आगे भी प्रकाशित होता रहेगा। इस आलेख में टोंग्याजी ने श्री मूलचन्द जी लुहाड़िया के आलेख 'सत्यमेव जयते'(जैन गजट ५/१०/२००६)की गहन तार्किक समीक्षा कर उसे सफेद झूठ सिद्ध किया है। इसके साथ ही आपने उच्चतम न्यायालय के अंतरिम आदेश दि. २०/०५/२००६ की समीक्षा / पुनरीक्षा कर उसके कुछ बिन्दुओं को अनपेक्षितरूप से उभारा है, जिनका समाधान अपेक्षित है। जैन गजट दि. २८/०९/२००६ में भी आपने 'कुण्डलपुर कोहराम----(बहस जारी है)' में प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी के आलेख 'हमारे कुछ विनम्र सुझाव' (जैन गजट दि.२४/०८/२००६)में कुछ छूटे बिन्दु जैसे - असली अपराधी कौन, मार्गदर्शन एवं सूत्रधार कौन तथा विष वृक्ष संवैधानिक संदिग्धता आदि के बिन्दुओं को उभारकर पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी को प्रकरण में संलिप्त करने का प्रयास किया है। इसी बीच श्री टोंग्याजी का 'कुण्डलपुर कोहराम भाग- २' दि. २०/११/२००६ को प्राप्त हो गया है। इसमें सर्वाधिक चिंतनीय बिन्दु पृष्ठ - 'आ' में प्रकाशित लेखक के छद्म स्वरूप को सही सिद्ध करते हुए यह तर्क दिया गया है कि 'हमारे यहाँ तो बड़े-बड़े आचार्यो ने आपातकाल में छद्म नाम व भेष का आश्रय लिया है, अत: लेखक का अपने नाम को गुप्त रख अपने विचारों को संप्रेषित करना कोई आपराधिक कृत्य नहीं है-----' अपने प्रमाण में किसी आचार्य का नामोल्लेख नहीं किया, जिन्होंने लेखक जैसा भय में कपटाचार किया हो। स्पष्ट है समूची आचार्य परम्परा को अपने जैसा सिद्ध करने में कोई परहेज नहीं किया। यह उल्लेखनीय है कि कुण्डलपुर कोहराम-प्रथम की प्राप्ति पर मैंने दो पत्र लेखक को लिखकर अनुरोध किया था कि वे अपने उद्देश्य की पूर्ति में चा.च. आचार्य श्री शांतिसागर जी की गरिमा को प्रश्न-चिह्नित न करें। दि. २४/०९/२००६ को लेखक के भाई श्री रमेश जी ने मुझसे फोन पर लम्बी चर्चा की और अपने पक्ष को रखते हुए बताया कि श्री अजीत टोंग्या कृषक हैं और वे मेरे पत्रों का उत्तर देंगे। उनका पत्रोत्तर अभी तक नहीं आया और न ही उन्होंने कुण्डलपुर कोहराम भाग-२ में मेरे पत्रों को प्रकाशित ही किया, जबकि अन्य महानुभावों के समर्थन करनेवाले पत्र पृष्ठ 'आ' में प्रकाशित हैं। यह स्थिति सहज संदेह को उत्पन्न करती है।

अंतरिम आदेश को श्री टोंग्याजी ने कुण्डलपुर को अधर, में निरूपित किया। इसकी सच्चाई जानने हेतु माननीय उच्च न्यायालय के आदेश दि.२०/०५/२००६ का अध्ययन किया। उससे जैनदर्शन का आधार 'सत् द्रव्य लक्षणम्' सहज सिद्ध हुआ और इसकी प्रतीति हुई कि कोई भी वस्तु आधारहीन नहीं है साधार है। निर्णय के निम्न कार्यभूत सार से आपको भी ऐसी ही प्रतीति होगी।

न्यायालय के आदेश की संक्षिप्त विवेचना एवं स्थगन आदेश-

माननीय न्यायालय जबलपुर के समक्ष याचिकाकर्ता भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, भोपाल ने याचिका प्रस्तुतकर कुण्डलपुर के बड़े बाबा के मंदिर और मूर्ति को 'प्राचीन स्मारक और संरक्षित' (एनशियेन्ट मोनुमेन्ट एण्ड आर्कि-ओलाजीकल साईट्स एण्ड रिमेन्स एक्ट १९५८) मान कर उसके निकट नवीन मंदिर निर्माण को निषिद्ध करने एवं यथास्थिति बनाए रखने हेतु निवेदन किया। न्यायालय ने दोनों पक्षों की दलीलों को सुनकर दि. १७/०१/२००६ को यथास्थिति बनाए रखने हेतु आदेश दिया। प्रतिपक्ष कुण्डलपुर ट्रस्ट का कथन है कि बड़े बाबा का मंदिर उक्त कानून के अंतर्गत प्राचीन स्मारक एवं संरक्षित नहीं है। बड़े बाबा की प्राचीन मूर्ति जीवन्त और पूज्य है। मंदिर की मरम्मत आदि ट्रस्ट द्वारा होती है। मंदिर जीर्ण हो गया है। भूकम्परोधी स्थान पर मूर्ति प्रस्थावित की जा रही है। दि. १७/०१/२००६ को ही बड़े बाबा की मूर्ति नवनिर्मित मंदिर की वेदी पर विराजमान हुई। याचिकाकर्ता का कथन है कि स्थगन आदेश का उल्लंघन हुआ और मूर्ति स्थगन आदेश के बाद हस्तांतरित हुई है। स्थगन आदेश की अवहेलना का प्रकरण माननीय न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है। (अन्य अनेक प्रकरण कानून उल्लंखन के स्थानीय पुलिस स्टेशन में दर्ज हुए जिनकी विधि अनुसार कार्यवाही विचाराधीन है)बाईस पदीय आदेश दि. २०/०५/२००६ के पद एक से छह में इसका विस्तृत विवरण है।

अंतरिम प्रार्थना पत्र

प्रति प्रार्थी ट्रस्ट में दि. ७/०१/२००६ (१८ एवं २३/०१/२००६)के स्थगन आदेश में संशोधन हेतु प्रार्थना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्र दिया और बड़े बाबा की मूर्ति को ढकने और सुरक्षित करने की अनुमति माँगी। याचिकाकर्ता-भा.पुरा.सर्वेक्षण ने इसका घोर प्रतिवाद किया और प्रार्थना पत्र द्वारा 'कमिश्नर' नियुक्त करने का अनुरोध किया जो न्यायालय को दिन-प्रति-दिन की सूचना दे। स्थगन आदेश के बाद भी मूर्ति स्थानांतरित करने का आरोप लगाया। (पद ७ एवं ८)

तर्क

उक्त आदेश के पद ९ से १२ तक उभयपक्षों के तर्क एवं राज्य शासन के तर्क एवं राज्य शासन के तर्क की समीक्षा है।

याचिकाकर्ता ने कहा कि बड़े बाबा की मूर्ति एवं मंदिर प्राचीन संरक्षित स्मारक एवं एन्टीक्यूटी (निर्जीव वस्तु) है। प्रति प्रार्थी ने इस पर आपत्ति की और उसे धार्मिक भावनाओं से जुदा जैन समाज का मंदिर निरूपित किया। यदि यह संरक्षित स्थल था तो याचिकाकर्ता को उसकी मरम्मत/रक्षा आदि करना थी जो उसने आज तक नहीं किया। (पद ९)

राज्य शासन के महान्यायवादी ने कहा कि बड़े बाबा जैन समाज द्वारा पूज्य हैं और उनकी धार्मिक भावनाओं से जुड़े हैं। पुराना मंदिर जीर्णशीर्ण था जिस कारण मूर्ति सुरक्षित नये स्थान पर स्थानांतरित की गयी। जैन समाज की धार्मिक भावनाओं को देखते हुए प्रति प्रार्थी कुण्डलपुर ट्रस्ट को मंदिर पूर्ण करने की अनुमति दी जाये उससे मूर्ति सुरक्षित रहेगी और जैन समाज पूजा कर सकेगी। (पद १०)

याचिकाकर्ता ने विरोध करते हुए नये मन्दिर के निर्माण को गलत, कार्य सही होना बताया और कहा कि हवा-धूप से मूर्ति की सुरक्षा हेतु याचिकाकर्ता फाइवर ग्लास का अस्थायी शेड बनाने को तैयार है। (पद ११)

प्रति प्रार्थी कुण्डलपुर ट्रस्ट के अधिवक्ता ने कहा कि जैन परम्परा में मूर्ति पर 'आइरन शेड' नहीं रखा जा सकता और धार्मिक नियम के अनुसार मूर्ति की संरक्षा हेतु प्रति प्रार्थी तैयार है। न्यायालय जो भी आवश्यक शर्तें निर्धारित करेगा, वह उनका पालन करेगा। याचिकाकर्ता ने इसका विरोध किया। राज्य शासन ने विरोध नहीं किया। (पद १२)

निष्कर्ष

माननीय न्यायालय ने स्थगन स्थिति अनुसार निम्न तथ्य अतिवादित पाये-

१. नये मन्दिर में मूर्ति दि. १७/०१/२००६ को शिफ्ट हुई। समय विवादित है।

२. बड़े बाबा की मूर्ति जैन समाज द्वारा पूजित है। कुण्डलपुर ट्रस्ट पूजा, मरम्मत और रखरखाव का कार्य करता है (मन्दिर और मूर्ति दोनों का)।

३. वर्तमान में मूर्ति खुले स्थान में निर्माणाधीन मन्दिर में आवृत है। वह किसी शेड से ढकी नहीं है।

४. प्रति प्रार्थियों (९ से ११) ने नौ करोड़ रु. की लागत से नया निर्माण किया है।

दोनों पक्षकार मूर्ति की संरक्षा आवश्यक मानते हैं। याचिकाकर्ता फाइवर ग्लास से ढकना चाहता है जबकि प्रति प्रार्थीगण मूर्ति पर धार्मिक नियमानुसार पक्का प्रोटेक्सन (शिखर) बनाना चाहते हैं। (पद १३) तर्क के मध्य उन्होंने मन्दिर निर्माण का नक्शा प्रस्तुत किया। उसके अने 'एक्स' में हरा चिह्नित क्षेत्र नये निर्माण का विद्यमान क्षेत्र है। नक्शा में नीला चिह्नित क्षेत्र प्रस्तावित निर्माण का है जबकि अन्य निर्माण लाल रंग से चिह्नित है। (पद १४)

दोनों पक्षों का विवाद दोनों को सुनकर ही निपटाया जा सकता है जो इस स्तर पर संभव नहीं है। अस्तु उक्त प्रार्थनापत्रों पर विचारकर मूर्ति के हित की रक्षा करना है। (पद १५)

पद १६ में माननीय न्यायालय में तथ्यों का विवेचन किया और विचारणा करते हुए लिखा कि यह ध्यान रखना होगा कि पुराना ढाँचा प्राचीन संरक्षित स्मारक था और बिना अनुमति के मूर्ति नये मन्दिर में शिफ्ट की है तो उसे गम्भीरता से लिया जायेगा क्योंकि किसी को कानून हाथ में लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती। दूसरी ओर यह भी तथ्य है कि प्रति पक्षी क्रमांक ९,१०,११ ने मूर्ति शिफ्ट करने हेतु नया निर्माण किया है जो विश्वास एवं पूज्यता का सूचक है और प्रथम दृष्टता ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिपक्षियों की ओर से भारी धनराशि व्ययकर मूर्ति के शिफ्टिंग में कोई दुर्भावना (मालाफाइड इन्टेन्सन) नहीं है। फिर भी याचिकाकर्ता की प्रार्थना एवं प्रतिवादी ने अपने पक्ष को प्रस्तुत किया है। परिस्थितियों के संदर्भ में इन बिन्दुओं का निर्णय किये बिना अंतरिमरूप से मूर्ति की संरक्षा आवश्यक माना। (पद १६)

पद १७ में अस्थायी शेड निर्माण के उभयपक्षों के तर्कों की समीक्षा करते हुए माननीय न्यायालय ने कहा कि प्रतिपक्ष कुण्डलपुर ट्रस्ट अपनी ओर से निर्माण का संपूर्ण व्यय वहन करेगा और उसने अने. एक्स में हरे रंग से दर्शाये स्थल पर भारी व्यय किया है और नीले रंग में दर्शाये स्थल पर व्यय करने को तैयार है लेकिन इस स्तर पर याचिकाकर्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या प्रति प्रार्थी को अकेले कार्य करने की अनुमति देना उचित नहीं है। न्यायालय की दृष्टि में जैनधर्म के अनुसार मूर्ति को ढँकने के ढाँचे से प्रकरण के गुणदोष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। किन्तु यह काम स्वतंत्र समिति के पर्यवेक्षण में होना चाहिए। यद्यपि शिखर (डोम) बनाने हेतु तकनीकि सहायता ली जा सकती है। इस उद्देश्य हेतु जिला जज की अध्यक्षता में एक समिति का गठन ठीक होगा जिसमें जिलाध्यक्ष एवं पुलिस अधीक्षक दमोह और दोनों पक्षों के एक-एक प्रतिनिधि होंगे। वर्तमान में मूर्ति के संरक्षण की आवश्यकता है। (पद १७)

परिणाम स्वरूप यह निर्देशित किया जाता है कि उक्त पाँच महानुभावों की समिति मूर्ति पर पक्का डोम (शिखर) बनाने का कार्य संपन्न करेगी ताकि मूर्ति संरक्षित हो और जैन समाज की धार्मिक भावना प्रभावित न हो। (पद १८)

उक्त समिति शिखर निर्माण कार्य की अनुमति देगी। प्रति प्रार्थी कुण्डलपुर ट्रस्ट समिति को योजना (प्लान) एवं अनुमानित लागत बताएगी जो मूर्ति के चारों से ढँकने हेतु निर्माण कार्य की स्वीकृति देगी। शेष निर्माण कार्य की स्वीकृति इस स्तर पर नहीं दी जा सकती। भक्तों और पूजकों को धूप-वर्षा से रक्षा हेतु अस्थाई शेड बनाया जा सकता है। (पद १९)

निर्देश - (पद २०)

परिणामस्वरूप निम्न निर्देश दिये जाते हैं-

१.नये मंदिर में जहाँ मूर्ति स्थापित है उस पर पक्का शिखर (डोम) निर्मित करने हेतु जिला जज, जिलाध्यक्ष, आरक्षी अधीक्षक दमोह एवं दोनों पक्षों के एक-एक प्रतिनिधि की समिति निर्मित की जाती है।

२. समिति शिखर और निर्माण का अनुमोदन करेगी। तकनीकी सलाह भी ले सकेगी। समिति सुनिश्चित करेगी की निर्माण के मध्य मूर्ति क्षतिग्रस्त न हो।

३. सदस्यों में मतभेद की स्थिति में जिला जज का निर्णय अंतिम होगा जो इस न्यायालय के आदेश का विषय होगा। जिला जज के निर्णय से आहत पक्ष इस न्यायालय से निर्णयपाने स्वतंत्र रहेगा।

४. निर्माण का संपूर्ण व्यय प्रतिपक्षी-कुण्डलपुर ट्रस्ट वहन करेगा जो तकनीकी सहायता एवं कार्य हेतु व्यक्ति नियुक्त करेगा। निर्माण पूर्व समिति से अनुमोदन लेगा। किन्तु वह किसी भी प्रकार की लागत, क्षति पूर्ति आदि का पात्र नहीं होगा यदि यह पाया जाता है कि कुण्डलपुर ट्रस्ट मन्दिर को अपने पास रखने का हकदार नहीं है या यह पाया जाये कि मूर्ति याचिकाकर्ता विभाग की है।

५. प्रतिपक्षी ९ कुण्डलपुर ट्रस्ट न्यायालय को हक प्रतिज्ञा-पत्र (अंडर टेकिंग) देगा कि वह मूर्ति पर निर्मित होने वाले शिखर एवं नीले रंग में दर्शाये गये मन्दिर के भाग के निर्माण का पूरी लागत वहन करेगा। शेष भाग उसके द्वारा निर्मित नहीं होगा। कुण्डलपुर ट्रस्ट प्रतिज्ञापत्र के साथ एक करोड़ रुपयों की प्रतिभू (स्यूरटी) प्रस्तुत करेगा कि निर्माण के मध्य मूर्ति किसी भी प्रकार क्षतिग्रस्त नहीं होगी और यदि हुई तो वह क्षतिपूर्ति हेतु उत्तरदायी होगा।

६. कुण्डलपुर ट्रस्ट का एक प्रस्ताव प्रस्तुत करेगा कि उक्त निर्माण उसकी लागत और जोखिम पर होगा और यदि यह सिद्ध हुआ कि पुराना ढाँचा संरक्षित स्मारक और मूर्ति एंटीक्वीटी है तब ट्रस्ट कोई हक या दावा प्रस्तुत नहीं करेगा और पुरातत्व विभाग नये मन्दिर को अपने कब्जे में लेगा और नया मन्दिर प्राचीन संरक्षित स्मारक और मूर्ति एंटीक्वीटी के रूप में समझी जायेगी।

७. न्यायालय के पंजीयक (ज्यू.) के समक्ष उक्त प्रतिज्ञा-पत्र प्रस्तुत होने पर एक सप्ताह में समिति की बैठक होगी ताकि संरक्षण का कार्य प्रारंभ हो।

८. यह अंतिम व्यवस्था मूर्ति के स्थान के संबंध में है। समिति अनेक्चर-एक्स में दर्शाये 'ए'- टू- 'ए' जो काली रेखा से घेरा है, के निर्माण को पूर्ण करेगी और उसके आगे निर्माण कार्य नहीं करेगी। अनेक्चर-एक्स इस आदेश का अंश है।

९. समिति निर्माण कार्य को निरंतर देखेगी और समय-समय पर कार्य स्थल पर निर्माण कार्य देखेगी और मूर्ति की संरक्षा हेतु व्यवस्था करेगी। जिला जज मासिक प्रतिवेदन प्रस्तुत करेंगे। उक्त समिति इस न्यायालय को अंतिम प्रतिवेदन तीन माह में तत्काल प्रस्तुत करेगी।

अंत में पद २१ में माननीय न्यायालय ने आदेशित किया कि यह अंतरिम व्यवस्था है और प्रकरण का गुण दोषानुसार निर्णय इससे अप्रभावित रहेगा और पक्षकार इस न्यायालय के समक्ष अपना पक्ष रखने स्वतंत्र हैं। यदि किसी पक्ष को आगे प्लीडिंग प्रस्तुत करना हो तो वह आठ सप्ताह में प्रस्तुत करने हेतु स्वतंत्र है। उसके बाद कार्यालय प्रकरण को सुनवाई हेतु लिष्ट करेगा।

हस्ता. के.के.लाहोटी, जज

दि. २०/०५/०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माननीय न्यायालय के उक्त अंतरिम आदेश से यह निर्विवादरूप से स्पष्ट है कि कुण्डलपुर दमोह के बड़े बाबा अपने अतिशय से पूर्णता सुरक्षित और संरक्षित हैं। मूर्ति का स्वत्व किसी का भी सिद्ध हो, बड़े बाबा अपने नवीन स्थान पर ही विराजित रहेंगे और यह स्थल ही प्राचीन संरक्षित स्मारक समझा जावेगा। विशिष्ट परिस्थितियों में कोई अन्यथा अंतिम निर्णय भी हो तब भी बड़े बाबा अपराजेय रहेंगे, साधार रहेंगे। माननीय उच्च न्यायालय के उक्त अंतरिम आदेश के मूलस्वरूप एवं दूर-दर्शितापूर्ण व्यवस्था को दृष्टि ओझलकर, श्री अजित टोंग्या ने 'अधर में कुण्डलपुर' लेखमाला जैन गजट में प्रारम्भ की; वह अयथार्थ, कल्पित एवं सद्भावनाहीन प्रतीत होती है। जिस भाषाशैली तर्कणा-पद्धति का आपने प्रयोग किया वह बहुरूपियाँ जैसी 'एक में अनेक' की लोकोक्ति चरितार्थ करती है। लेखमाला में वे लोक-अभियोजक, याचिकाकर्ता के पेरोकार (पक्षधर), न्यायाधिपति और अपील अथॉरिटी जैसे सहज दिखाई देते हैं जिसका एक मात्र उद्देश्य, सत्य-असत्य, कुण्डलपुर ट्रस्ट को प्रश्न चिह्नित कर आरोपी सिद्ध करना है। श्रमण संस्कृति, जैनत्व को मर्यादा एवं संस्कृति के प्रतीकों की रक्षा का उससे काई प्रत्यक्ष संबंध दिखाई नहीं देता। उनके द्वारा विकृत रूप से उठाये गये बिन्दु और उनकी अप्राकृतिक समीक्षा से यह बात सिद्ध हो जाती है। यहाँ ये स्पष्ट करना समीचीन होगा कि प्रकरण माननीय न्यायालय के समक्ष निर्णयार्थ विचाराधीन होने के कारण प्रकरण के औचित्य पक्ष या विपक्ष में मत व्यक्त करना लेखक का काई उद्देश्य नहीं है और न वह किसी व्यक्ति/संस्था से सम्बद्ध है। प्राचीन धरोहर की रक्षा सुरक्षा हेतु उसकी अपनी स्वतंत्र भावनात्मक धारणा है।

१. मध्यस्थ की भूमिका

बहस जारी है (जैन गजट २८/०९/२००६) में लेखक ने प्राचार्य श्री नरेन्द्र प्रकाश जी के सुझावों (जैन गजट २४/०८/२००६) के संदर्भ में असली अपराधी की खोज, मार्गदर्शक एवं सूत्रधार कौन, संवैधानिक संदिग्धता के बिन्दुओं को रेखांकित कर मध्यस्थकर्ताओं का मार्गदर्शन किया है। यहाँ प्रथम तो मध्यस्थकर्ता का अस्तित्व संदिग्ध है। किसने किसको मध्यस्थकर्ता बनाया जबकि प्रकरण केन्द्रीय पुरातत्व विभाग की ओर से न्यायालय में लंबित है। दूसरे, प्राचार्यजी ने अपने सुझाव श्री पं. हेमन्त काला एवं अन्य सहभागियों के अनुरोध पर दिये। ये विद्वान् किस पक्ष के प्रतिनिधि हैं और किस लक्ष्य (गर्भित)को पूर्ण करने सुझाव माँगे, यह स्पष्ट नहीं है। यह एक अद्भुत संयोग है कि संदर्भित और कुण्डलपुर कोहराम के लेखक की लेखन-शैली, अभिव्यक्ति एवं तर्कणा पद्धति एक सी है दोनों में अंतर करना कठिन है। ऐसी स्थिति में और जो संकेत मिले हैं उनसे यही ध्वनित होता है कि आरोपकर्ता, आलोचनाकर्ता, समाधान-याचक, समाधानकर्ता और उनके प्रेरक महानुभाव सभी एक छत के नीचे बैठकर योजनाबद्धरूप से यह कार्य सम्पादित कर रहे हैं। इन्दौर नगरी जो कभी जैन संस्कृति के संरक्षण का केन्द्र मानी जाती थी, अब वह संस्कृति की विराधना के प्रतीकरूप में उभर रही है। भ. महावीर की जन्मभूमि का अपहरण. बद्रीनाथ का मूर्ति विवाद और अब कुण्डलपुर दमोह प्रकरण को विकृत दिशा देना, यह सब कार्य एक ही कड़ी में देखे जाने लगे हैं। तीसरे, विद्वान् लेखक ने अपराध और प्रकृति पर अंकुश लगाने हेतु जो संकल्प किया है वह निरपराधवृत्ति से ही सम्भव होगा। चा.च. आचार्य शांतिसागर जी के नाम पर उनकी नीति के विरुद्ध कार्य करना, किसी आचार्य को अपराधी मानकर अनुचित कथन करना, पूर्वाचार्यों पर आपातकाल में (भयभीत होकर) छद्म नाम और भेष के आश्रय का निन्द्य कथन करना, बड़े बाबा की अखंड मूर्ति को बीच से खंडित जैसी दो रंगों में प्रकाशित कर उनकी अविनय करना आदि ऐसे कृत्य हैं जो लेखक और उसके आश्रय दाताओं की मनोवृत्ति एवं असहज कार्य शैली दर्शाते हैं। न्यायाकांक्षी को स्वच्छ हाथों से न्याय माँगना चाहिये; तथा क्या वे इस कसौटी पर खरे उतरे हैं; विचारणीय है।

२. सत्यमेव जयते

श्री टोंग्याजी ने 'सत्यमेव जयते' के प्रतिकाररूप में 'कुण्डलपुर प्रकरण में दिगम्बर जैन समाज की पराजय तय' नामक आलेख के प्रकाशन की सूचना दी। तदर्थ धन्यवाद। कलियुग में 'सर्वज्ञ' भव्य हैं यह ज्ञातकर हर्ष हुआ जो जय-पराजय को सुनिश्चित करते हैं। जय-पराजय तो तथ्यों, साक्ष्यों और उनके प्रस्तुतिकरण पर निर्भर करता है। कभी-कभी जीता केस हार जाते हैं और हारा केस जीत जाते हैं। समझ में नहीं आता कि लेखक की रूचि पराजय की ओर क्यों है? उसमें किस कारण माध्यस्थ भाव का लोप हुआ और वह कैसे नायकत्व के विरुद्ध कार्य शील हुआ। इसका रहस्य समझना अपेक्षित है। यह ज्ञातव्य है कि प्रकरण में स्टे (स्थगन)आदेश मिलता है तो पक्षकार की आधी जीत सम्भावित हो जाती है और जब 'स्टे' हटता है या संशोधित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है तब तदनुसार प्रतिपक्षी अपनी जीत हेतु आशावान हो जाता है। यह आशा सत्यमेव का जनक बन जाती है। विद्यमान प्रकरण में नवमन्दिर में विराजित बड़े बाबा का अंतरिम आदेशानुसार, यथास्थिति में रहना सम्भाव्य है भले ही मन्दिरजी का आधिपत्य किसी का भी निर्णित हो। इस स्थिति को अस्वीकार करना अपने को भ्रम में रखना होगा। इस परिस्थिति में नवमन्दिर के निर्माण का कार्य हो जाने की कल्पना करना उचित प्रतीत नहीं होती क्योंकि माननीय न्यायालय ने मूर्ति के स्थानांतरण एवं मन्दिर निर्माण को दुर्भावना रहित (अपराधबोध रहित) माना है। इस टीप का महत्व समझना आवश्यक है। यह भी स्मरणीय है कि अपराध की स्थिति में दण्ड व्यवस्था भी सुनिश्चित है। उसके लिए किसी को व्यग्र होने की आवश्यकता नहीं। जरूरत मात्र निर्णय पूर्व हम पूर्वाग्राही न हों, यही है।

३. मूर्ति पर डोम का निर्माण

बड़े बाबा की मूर्ति को संरक्षित करने हेतु डोम के निर्माण के प्रकरण में लेखक श्री अजीत टोंग्या ने पुरातत्व विभाग की उदारता, कुण्डलपुर ट्रस्ट की कृतघ्नता और माननीय न्यायाधीश श्री के.के. लाहोटी जी के स्व-विवेक को प्रश्न चिह्नित किया है। यह तीनों कार्य न्यायालयीन मर्यादा के प्रतिकूल एवं जनभ्रम उत्पन्न करने वाले हैं। यही सही नहीं है कि याचिकाकर्ता पुरातत्व विभाग ने संवेदनशील होकर मूर्ति को ढँकने हेतु अनुमति माँगी या सहमति दी। वस्तु स्थिति यह है कि पहिले पुरातत्व विभाग ने इसका विरोध किया और जब कुण्डलपुर ट्रस्ट ने इसकी आवश्यकता पर जोर दिया तब लोहे के ढाँचे पर फाइवर ग्लास लगाने का प्रति प्रस्ताव रखा। यदि पुरातत्व विभाग संवेदनशील होता तो बुंदेलखण्ड क्षेत्र की बूढ़ी चंदेरी, गोलाकोट, पचराई आदि स्थानों पर जैन मूर्ति का ध्वंश नहीं होता और न ही विभाग कुण्डलपुर ट्रस्ट के प्रस्ताव का विरोध करता। संवेदनशीलता तो तब मालूम पड़ती जब पुरातत्व विभाग स्वयं मूर्ति पर शेड बनाने की प्रार्थना करता, जो नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में कुण्डलपुर ट्रस्ट को कृतघ्न कहना अनुचित, अनाधिकृत और असद्भाव का सूचक है। पुरातत्व विभाग ने विवशता में ट्रस्ट की भावना का अनुमोदन किया कि धूप-पानी से मूर्ति की संरक्षा आवश्यक है। पता नहीं क्यों विद्वान् लेखक असत्य आधार पर पुरातत्व विभाग का समर्थन और प्रशंसा कर रहे हैं। 'शत्रु का शत्रु मित्र' या 'शत्रु के शत्रु के साथ सहभागिता' का सिद्धांत क्रियाशील हो रहा हो तो आश्चर्य नहीं? कुण्डलपुर ट्रस्ट ने यदि न्यायालय के समक्ष न्यायालय की शर्तों पर मूर्ति को ढँकने की अनुमति न माँगी होती तब स्थिति कुछ और हो सकती थी। यह उनकी सद्भावना पूर्ण सोच को दर्शाता है। इसका ही परिणाम था कि नैसर्गिकरूप से 'बड़े बाबा' अपराजेय रहे। वे किसी विभाग, संस्था या व्यक्ति की कृपा के मुहताज नहीं और जो ऐसी भावना रखता है, उसके दुर्भाव का प्रतीक है।

विश्वासघात, कृतघ्नता आदि भाव सामाजिक जीवन में घटना सापेक्ष होते हैं। अधिकार और हकों की लड़ाई / विवाद में इनका कोई स्थान नहीं होता। दोनों पक्ष न्यायालय के समक्ष अपना-अपना पक्ष रखते है और न्यायालय गुण-दोष के आधार पर माध्यस्थ भाव से अपना निर्णय देता है। इसमें विश्वासघात कहाँ हुआ? कैसे हुआ? यह तो सद्बुद्धि की उपज नहीं कही जा सकती। यह कल्पना करना दुष्कर है कि याचिकाकर्ता न्यायालय के समक्ष विरोधी पक्ष के हित में अपना समर्पण करें। यदि ऐसे संकेत हैं तो उसे अपना प्रकरण वापिस लेकर संवेदनशीलता का प्रमाण-पत्र ले लेना चाहिये। अपने कर्तव्य के प्रति विश्वासघात करना जघन्य अपराध है।

४. मूर्ति पर आइरन शेड की स्थिति

श्री अजीत टोंग्या ने मूर्ति पर 'आइरन शेड' के निर्माण के बिन्दु पर गहन विचार व्यक्त किये हैं और धार्मिक ग्रंथो का भी संदर्भ दिया है। लेखक की कटुआलोचना पढ़कर ऐसा लगा कि लेखक भावावेश में तथ्य भ्रमित हुआ है और उसने अंवाछनीय, अनुचित निष्कर्ष ग्रहण कर स्वयं भ्रमित हुआ और पाठकों को भ्रमित किया। ऐसा करते समय उसने न्यायिक मर्यादा का भी उल्लंघन किया। कुण्डलपुर ट्रस्ट ने 'आइरन के शेड' के निर्माण का विरोध किया था और उसे जैन परम्परा के प्रतिकूल बताया। 'आइरन के शेड' और निर्माण में 'आइरन का यथा आवश्यक उपयोग' इन दोनों में बहुत अंतर है। पूर्व में तो पाषाण शिलाओं से ही मन्दिर बनाते थे। बाद में सीमेंट, आइरन का उपयोग होने लगा। शिखर ईटों से बनने लगे। मैं इस विवाद में नहीं जाना चाहता। किन्तु इतना निश्चित है कि न केवल जैन परम्परा किंतु वैदिक परम्परा में भी मूर्ति पर लोहे का शेड नहीं बनाया जाता। ऐसी स्थिति में जैनमन्दिर विवादित हो जायेगा सम्भव नहीं है। दिनांक १९/११/२००६ को लगभग छः बजे शाम को एन.डी.टी.वी. पर यह न्यूज प्रसारित हुई- 'बाबरी मस्जिद पर स्टील का ढाँचा न बनाया जाये।' यह न्यूज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारा भ्रम दूर करने पर्याप्त है। लोहा लोहा ही होता है अन्य धातुएँ लोहे में सम्मिलित नहीं होती, वे अलोह धातु के नाम से जगत प्रसिद्ध हैं। इसमें कहीं किसी को भ्रम नहीं होना चाहिये। 'लोहे के शेड' के संदर्भ में ही माननीय न्यायालय ने अपने निष्कर्ष ग्रहण किये; न कि लोहे को बिन्दु मानकर। मेरी समझ में कुण्डलपुर ट्रस्ट ने भी इसी भावना से 'लोहे के शेड' का विरोध किया जो किसी भी रूप में विश्वासघात या छल नहीं कहा जा सकता। भारत मन्दिरों के वैभव से महान् हुआ। भारतीय संस्कृति में कहाँ-कहाँ 'लोहे के शेड' के मन्दिर हैं, विद्वान् लेखक के अनुभव में आये हों तो, कृपया सूचित करने की कृपा करें। कोई नंदीश्वर द्वीप जिनालय 'लोहे के शेड' का बना हो तो वह भी बतावे। फिर एक बात और विचारणीय है कि जब रागी देवी-देवता का पूजक वीतरागी जैनधर्म का 'जैन' हो सकता है तब 'आइरन शेड' आइरन प्रयुक्त मन्दिर जैनमन्दिर क्यों नहीं हो सकता ? इतना ज्ञान तो इतर धर्मावलम्बियों का भी है।

लेखक श्री टोंग्या जी ने इसी संदर्भ में माननीय न्यायालय के बारे में लिखा कि "यहाँ चिन्ता का विषय यह है कि फ्रेम तो ताँबे या लकड़ी की भी बनाई जा सकती थी- ----- फिर उच्च न्यायालय ने लोहे के अलावा अन्य किसी भी विकल्प का प्रस्ताव पुरातत्व विभाग से क्यों नहीं माँगा?----- स्वयं ही सिद्ध करता है कि लोहा कहने से उच्च न्यायालय को तांबा व लकड़ी भी इष्ट है,------" इसी उदार कल्पना के आधार पर लेखक ने लकड़ी, तांबा और लोहे को एकार्थी मानकर मनमाने निष्कर्ष निकाल लिये। भाई टोंग्याजी, ऐसी स्थिति में अदालतें अपनी ओर से सुझाव आदि नही माँगती। वे तो प्रस्तुत साम्रगी के आधार पर निर्णय देती हैं। यह तो पुरातत्व विभाग का काम था कि वह 'लोहे के फ्रेम' के स्थान पर लकड़ी / तांबे के फ्रेम का प्रस्ताव माननीय अदालत के समक्ष रखता और अदालत उस पर निर्णय करती। आप जैसा तार्किक कानून विद वहाँ उपस्थित होता तो आपको इस विषय पर जन-भ्रम उत्पन्न करने का अवसर ही नहीं मिलता और पुरातत्व विभाग का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता। जो अपेक्षा आपने माननीय न्यायाधीश महोदय से की, वह तो अपीलीय न्यायालय भी ऐसा नहीं करता। जिस प्रकार प्रथम दृष्टया आप पुरातत्व विभाग की पैरवी कर रहे हैं अदालतें किसी भी पक्ष के प्रति ऐसा व्यवहार नहीं करतीं यही उसकी निष्पक्षता है। इस बिन्दु पर इतना लिखना ही पर्याप्त है जो भ्रम निवारण कर देगा।

५. एक करोड़ की सुरक्षा निधि/समिति गठन

एक करोड़ की सुरक्षा निधि के नाम पर भी लेखक ने समीक्षा की है। उसे माननीय न्यायालय की द्विधा/संशक मन का सूचक माना है। लेखक ने यहाँ भी सच्चाई के परे कथन किया। प्रथम तो एक करोड़ रु. की सुरक्षा निधि अदालत में जमा कराने का आदेश नहीं दिया मात्र प्रति-भू (स्यूरटी) माँगी गयी ताकि मन्दिर निर्माण में यदि मूर्ति क्षतिग्रस्त हुई तो उसकी क्षति पूर्ति की जा सके। दूसरे, यह विश्वास या अविश्वास की सूचक न होकर मूर्ति को सुरक्षा हेतु जागरूकता का सूचक है। इस जागरूकता हेतु माननीय न्यायालय को 'संशक' बताना अज्ञानता का प्रदर्शन है। यही स्थिति निर्माण हेतु निष्पक्ष समिति बनाने की है। विवादग्रस्त स्थिति में किसी भी पक्षकार को सम्पत्ति का कब्जा नहीं दिया जाता। यह किसी भी पक्ष की अस्मिता को प्रश्न चिह्नित नहीं करता किन्तु देश में कानून के नियम (रूल ऑफ लॉ) की अवधारणा सिद्ध करता है। यह अपमान नहीं, कानूनी व्यवस्था का सम्मान है। कृपया भ्रमित न हों। जब कोई पक्षकार अपने अधिकार की रक्षा हेतु प्रयास करता है तब उसे कृतघ्न आदि कहना दुर्भावना सूचक है। इससे धर्म संस्कृति प्रश्न चिह्नित नहीं होती। धर्म संस्कृति तब प्रश्न चिह्नित होती है जब निहित अल्पस्वार्थ हेतु पूज्य आचार्य को कायर/छद्मवेषी कहा जाता है। गिद्ध दृष्टि हमारी हम पर ही लगी प्रतीत होती है, जैसा उक्त स्पष्टीकरण से ध्वनित हो रहा है।

६. मूर्ति का झुकाव एवं महामस्तकाभिषेक

श्री अजीत टोंग्या ने जैन गजट २/११/२००६ में पूरे एक पृष्ठ पर इस विषय में समीक्षा की है कि जब सन १९९० के भूकम्प में दीवालें क्षतिग्रस्त एवं मूर्ति तीन सेन्टीमीटर तक झुक गयी थी तब सन् २००१ में मूर्ति का महामस्तकाभिषेक कैसे किया गया? यह विरोधाभाषी कथन है। इस पर भी गम्भीरता से विचार किया। प्रश्न यह है कि मूर्ति के एक और झुकाव से क्या पूजा-भक्ति अभिषेक प्रभावित होंगे ? क्या इन कार्यों को बंद कर दें या उससे मूर्ति प्रभावित होगी? सामान्य समझ तो यही कहती है कि इन कार्यों के मर्यादित/सतर्कता पूर्वक करने से मूर्ति क्षीण नहीं होगी। महामस्तकाभिषेक दैनिक क्रिया नहीं है। वेदी का झुकाव क्षतिग्रस्तता का सूचक है, जो चिंतनीय है।

७. नवीन मन्दिर की भव्यता

श्री टोंग्या ने निर्माणाधीन नये मन्दिर की भव्यता को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न चिह्नित किया है। उनकी दृष्टि में ५० करोड़ की लागत का मन्दिर भव्य नहीं हो सकता उसके लिए अरबों रु. की धनराशि चाहिये और यदि कोई भामाशाह कुण्डलपुर ट्रस्ट को मिल जाता तो वह योजना भी अरबों की हो जाती। लेखक के भाई श्री रमेश जी ने भी फोन पर चर्चा करते समय मुझसे कहा कि प्रस्तावित मन्दिर अक्षरधाम जैसा भव्य नहीं है जिसका समर्थन किया जाये। उनका यह सुझाव विचारणीय है। भव्यता आकाश जैसी असीम है किन्तु उसका सीधा संबंध साधनों की सुलभता से होता है। कितना अच्छा होता यदि लेखकगण पुरातत्व विभाग के स्थान पर बड़े बाबा के पक्षधर बन कर यथासमय कुण्डलपुर ट्रस्ट का मार्गदर्शन करते और वे अपनी सामर्थ्य के अनुरूप मन्दिरजी को भव्यता प्रदान करते। मेरी दृष्टि में तो बड़े बाबा की भव्यता से मन्दिरजी की भव्यता का निर्धारण होगा। श्री नीरज जी जैन के अनुसार 'बड़े बाबा का मन्दिर प्राचीन स्थापत्य का अधिक महत्वपूर्ण प्रासाद नहीं है;' फिर भी वह लेखक को भव्य जैसा लगता था। जीर्णता का दृष्टिकोण अलग विषय है। रही बात छोटे द्वार और बड़े श्री जी की; इस संबंध में हमें अपने पूर्वजों की सोच की ओर देखना होगा। बुन्देलखण्ड में प्रायः ऐसे ही मन्दिर मिलेंगे। सुरक्षा और श्री जी के सम्मान की दृष्टि से द्वार छोटा ही बनाया जाता रहा। चन्देरी स्थिति चौबीस जिनालय का उदाहरण पर्याप्त है। इस दूरदर्शी सोच को श्री जी/बड़े बाबा का अपमान कैसे कहा जा सकता है? पूर्व स्थान/मन्दिर भी ऐसा ही था छोटे द्वार का। उस समय भी उनकी निगरानी में वह मन्दिर बना होगा। बुद्धि चातुर्य्य का प्रयोग अपने आराध्य इष्ट को अपमानित करने में नहीं करें तो अच्छा होगा। मन की मलिनता एवं संकीर्णता से देवाधिदेव को दूर रखने से ही संस्कृति विकृत होने से बचेगी।

८. स्थानांतरण हेतु मूर्ति को सांखलों से बाँधना

लेखक ने मूर्ति के स्थानांतरण के समय बड़े बाबा को सांखलों में बाँध कर नये मन्दिरजी में ले जाने का व्यंग्यात्मक उल्लेख किया है। मेरे मन में यह सहज विचार आया कि जब आइरन फ्रेम के नीचे बड़े बाबा नहीं रह सकते तब लोहे की सांखलों से उन्हें कैसे बाँधा जा सकता है ? जानकारी लेने पर मालूम हुआ कि सांखलों से बाँधकर ले जाने की कल्पना लेखक की अपनी है यथार्थ में बड़े बाबा को फाइवर के मजबूत पट्टों के आश्रय से स्थानांतरित किया गया था। नीति और आगम की बात करने वालों को विरोध करने हेतु आधारहीन कथन लिख कर समाज को गुमराह नहीं करना चाहिये।

९. विभीषण कौन ?

लेखक ने सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के संदर्भ में विभीषण की खोज का आह्वान किया जिससे जैन धर्म का अस्तित्व और अस्मिता बची रहे। उनके इस नैतिक सोच के लिये साधुवाद। आश्चर्य यह है कि जो लेखक भय के कारण छद्म नाम से अपनी बात कहकर उसके औचित्य की सिद्धि हेतु बड़े-बड़े आचार्यों को वैसा कृत्य करने का दम भरता है उसे स्वयं यह निर्णय करना चाहिये कि वह किस भावभूमि पर खड़ा है ? उसके स्वरूप का निर्णय करने वह दूसरों को क्यों आमंत्रित कर रहा ? विचारणीय है। श्री लुहाड़िया जी भी यदि किसी भय से पीड़ित हों, जैसी लेखक की कल्पना है, तो मेरा उनसे अनुरोध है कि वे लोकहित में उसको प्रकट करें या लेखक को समाधान देने की कृपा करें।

श्रमण संस्कृति की रक्षा, प्राचीन धरोहर की सुरक्षा अपने आराध्य देव, शास्त्र गुरू के सम्मान का भार प्रत्येक जैन नामधारी व्यक्ति का है। धार्मिक मर्यादाओं के पालन से ही संस्कृति सुरक्षित रहेगी। निजी खुले व्यवहार से विनाश ही होगा। बुन्देलखण्ड जैन कला और संस्कृति का केन्द्र है। पुरातत्त्व विभाग ने कानूनों के संदर्भ में उन्हें संरक्षित घोषित किया किन्तु सुरक्षा के अभाव में कलाकृतियाँ चोरी हो रही है, सिर काटे जा रहे हैं। दुखद है कि शाब्दिक वाणी विलास करने वाले बुन्देलखण्ड में जाकर यथार्थ को नहीं समझना चाहते हैं। उनका गर्भित उद्देश्य धन बल और संचार संसाधनों के बल से समाज में पंथवाद को हवा देना प्रतीत हो रहा है। संयोग से विद्यमान प्रकरण का लाभ उठाते हुए पुरातत्त्व विभाग से पूछा जा सकता था कि कितने जैन स्थल संरक्षित घोषित किये और वर्तमान में उनकी क्या स्थिति है? क्या घोषित कर देने मात्र से संरक्षित हो जावेंगे या उसके लिए कुछ करना पड़ता है। यह अवसर हम चूक गये और अपनी शक्ति का उपयोग विघटन की ओर करने लगे। इस प्रकरण के रहस्य जब उजागर होंगे तब इतिहासकार यही कहेंगे कि बाड़ ही खेत को खा गयी। समय की प्रतीक्षा करें। माननीय उच्च न्यायालय के निर्णय से वस्तु स्थिति स्पष्ट हो जावेगी और जो वर्तमान में सर्वज्ञता का चोला ओढ़ कर समाज को भ्रमित कर रहे हैं उसका स्वरूप भी उजागर हो जावेगा। संस्थागत अर्थ सहयोग से लोकमत में व्यक्ति की धारणाएँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैसी नहीं बदलती। उसके लिए निजी हित उत्पन्न किये जाते हैं।

१०. रक्षा साधन विध्वंस में

'अधर में कुण्डलपुर' आलेख में उक्तानुसार अयथार्थ एवं भ्रम करने वाले कथन किये गये और वह भी विशेषज्ञ बनकर। समीक्षा का यह तरीका धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टि एवं न्यायिक दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। 'जैन संस्कृति रक्षा मंच' जयपुर के पदाधिकारियों से मैं परिचित हूँ। उसमें सभी विचारधारा के उदार मनीषी हैं। उन्होंने कल्पना भी नहीं की होगी कि संस्कृति संरक्षण के पावन उद्देश्य के कार्य की पहल को समाज का कोई वर्ग/संस्था इसप्रकार विकृतरूप से प्रस्तुत कर समाज एवं संस्कृति के विध्वंस का साधन बनाएगी। विद्वान् पाठकों से साग्रह अनुरोध है कि वे यथार्थ को समझें और ऐसे व्यक्तियों के प्रभाव में न आयें जो समाज को पंथवाद में विभक्त करते हों। इस दिशा में जैनगजट की भूमिका भी अनेक शंकाओं को जन्म देती है। उसमें संस्कृति संरक्षण के कृत्य को विकृतरूप में प्रस्तुत करने 'अधर में कुण्डलपुर' का धारावाही प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया। समय के संदर्भ में नीतियों में परिवर्तन अपेक्षित है। जैन समाज की प्रामाणिकता और श्रमण संस्कृति की पावनता बनाए रखने में सभी का सकारात्मक सहयोग अपेक्षित है। उच्चतम न्यायालय के निर्णय के पूर्व भी धारणा व्यक्त करना असद्भाव का सूचक है। सुधीजन मार्गदर्शन करें।

बी-३६९ ओ.पी.एम., अमलाई
(म.प्र.)४८४११७

अबला नहीं सबला

सागर से गौरझामर में पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा थी वहाँ गया। रात्रि के समय एक युवती श्री मन्दिर जी के दर्शन के लिये जा रही थी। मार्ग में सिपाही ने उसके उरस्थल में मजाक से एक कंकड़ मार दिया। फिर क्या था अबला सबला हो गई। उस युवती ने उसके सिर का साफा उतार दिया और लपककर तीन-चार थप्पड़ उसके गाल में इतने जोर से मारे कि गाल लाल हो गया। लोगों ने पूछा की बहिन क्या बात है? वह बोली-इस दुष्ट ने जो पुलिस की वर्दी पहने और रक्षा का भार अपने सिर लिये है मेरे उरस्थल में कंकड़ मार दिया। इस पामर को लज्जा नहीं आती, जो हम अबलाओं के ऊपर ऐसा अनाचार करता है। इतना कहकर वह उस सिपाही से पुन: बोली- 'रे नराधम! प्रतिज्ञा कर कि मैं अब कभी भी किसी स्त्री के साथ ऐसा व्यवहार न करूँगा। अन्यथा मैं स्वयं तेरे दरोगा के पास चलती हूँ और वह न सुनेंगे तो सागर कप्तान साहब के पास जाऊँगी।'

वह विवके शून्य-सा हो गया। बड़ी देर में साहस कर बोला-बेटी! मुझसे महान् अपराध हुआ क्षमा करो, अब भविष्य में ऐसी हरकत न होगी। खेद है कि मुझे आज तक ऐसी शिक्षा नहीं मिली। युवती ने उसे क्षमा कर दिया और कहा- पिता जी! मेरी थप्पड़ों का खेद न करना, मेरी थप्पडें तुम्हें शिक्षक का काम कर गईं। अब मैं मन्दिर जाती हूँ, आप भी अपनी ड्यूटी अदा करें। वह मण्डप में पहुँची और उपस्थित जनता के समक्ष खड़ी होकर कहने लगी- 'माताओ और बहनो! आज दोपहर को मैंने शीलवती स्त्रियों के चरित्र सुनें, उससे मेरी आत्मा में वह बात पैदा हो गई कि मैं भी तो स्त्री हूँ। यदि अपनी शक्ति उपयोग में लाऊँ, तो जो काम प्राचीन माताओं ने किये, उन्हें मैं भी कर सकती हूँ। यही भाव मेरे रग-रग में समा गया। उसी का नमूना है कि एक ने मेरे से मजाक किया। मैंने उसे जो थप्पड़े दीं, वही जानता होगा और उससे यह प्रतिज्ञा करवा कर आई हूँ कि बेटी! अब ऐसा असद्व्यवहार न करूँगा।'

बात यह है कि हमारा समाज इस विषय में बहुत पीछे है। हमारे समाज में माता-पिता यदि धनी हुए तो कन्या को गहनों से लादकर खिलौना बना देते हैं। विवाह में हजारों खर्च कर देवेंगे। परंतु बेटी योग्य लड़की बने, इसमें एक पैसा भी खर्च नहीं करेगें। सबसे जघन्य कार्य तो यह है कि हमारे नवयुवक और युवतियों ने विषयसेवन को दाल रोटी समझ रखा है। इनके विषयसेवन का कोई नियम नहीं है, ये न धर्मपर्वों को मानते है और न धर्मशास्त्रों के नियमों को। कहते हुए लज्जा आती है कि एक बालक तो दूध पी रहा है, एक स्त्री के उदर में है और एक बगल में बैठा चें-चें कर रहा है। फल इसका देखो कि सैकड़ों नर-नारी तपेदिक के शिकार हो रहे हैं, अत: यदि जाति का अस्तिव सुरक्षित रखना चाहती हो, तो मेरी बहिनो इस बात की प्रतिज्ञा करो कि हमारे पेट में बच्चा आने के समय से लेकर जब तक वह तीन वर्ष का न होगा, तब तक ब्रह्मचर्यव्रत पालेंगी। यही नियम पुरुषवर्ग को लेना चाहिये। यदि इसको हास्य में उड़ा दोगे, तो तुम हास्य के पात्र ही रहोगे। साथ ही यह भी प्रतिज्ञा करो कि अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टान्हिकापर्व, सोलहाकरणपर्व तथा दशलक्षणपर्व में ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करेंगी, विशेष कुछ नहीं कहना चाहती। उसका व्याख्यान सुनकर सब समाज चकित रह गया। बाबा भागीरथ जी ने दीपचन्द्र जी वर्णी से कहा कि यह अबला नहीं सबला है।

मेरी जीवन गाथा : श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सरगुजा का जैन पुरातत्त्व वैभव

प्रो. उत्तमचन्द्र जैन गोयल

छत्तीसगढ़ के सरगुजा की रामगढ़ पहाड़ी शैलगुफाओं, मंदिरों, प्राचीन शिला-प्रवेश-द्वारों, मूर्तियों के भग्नावशेषों आदि पुरातात्त्विक सम्पदा से समृद्ध है। ये पुरावशेष निश्चित-रूप से सरगुजा जिले में उन्नत कला, संस्कृति तथा सभ्यता के युग को प्रतिबिम्बित करते हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि नि:संदेह सरगुजा किसी बहुत ही सभ्य जाति के लोगों से आबाद था।[१] यहाँ प्राचीन काल की शिल्पकला के विशेष चिह्न आज भी मौजूद हैं, जिनके अवलोकन से ज्ञात होता है कि किसी जमाने में यहाँ के निवासी वर्तमान निवासियों से शिल्पविद्या में अधिक निपुण थे। अति प्राचीन काल से रामगढ़ जैन धर्म एवं संस्कृति के प्रमुख केन्द्र के रूप में विख्यात है। यहाँ अनेक धार्मिक घटनायें हुई हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि रामगढ़ दिगम्बरजैन मुनियों की तपोभूमि के लिए अत्यधिक अनुकूल था।

रविषेणाचार्य ने अपने ग्रंथ 'पद्मचरित' (रचना ६२४ ई.)में लिखा है कि सरगुजा के रामगिरि का प्राचीन नाम वंशगिरि था तथा राम की वसति के कारण उसका नाम रामगिरि पड़ गया।[२] कालांतर में चन्द्रगुप्त के शासन काल में सुरक्षात्मक कारणों से यहाँ एक गढ़ या किले का निर्माण किया गया, तब से इसकी संज्ञा रामगढ़ हो गई। तब से यही नाम प्रचलित है। इसी रामगढ़ में प्राचीन जैन-संस्कृति के अमूल्य अवशेष बिखरे पड़े हुए हैं।

नागपुर के रामटेक तथा सरगुजा के रामगढ़ को वास्तविक रामगिरि मानने या न मानने के संबंध में तीव्र विवाद रहा है। प्रो. का. वा. पाठक ने सन् १९१६ में प्रकाशित 'मेघदूत' की द्वितीय आवृत्ति में इस स्थान का समीकरण पूर्व मध्यप्रांत की रामगढ़ पहाड़ी से किया है जो अब छत्तीसगढ़ में है। इतना ही नहीं, एम. वैंकटरामैया तथा अन्यान्य कतिपय विद्वानों ने सरगुजा के रामगढ़ पर्वत को रामगिरि के समान ग्रहण किया है।[३]

सरगुजा की पुरातात्त्विक धरोहर की विशेषज्ञ डॉ. कुन्तल गोयल ने लिखा है कि कालिदास के पूर्व यद्यपि किसी कवि ने रामगिरि का उल्लेख नहीं किया, किन्तु कालिदास के परवर्ती कवि रविषेणाचार्य (पद्मचरित/४०/४५) तथा उग्रादित्याचार्य (कल्याणकारक, शोलापुर, १९४०) ने इसका वर्णन किया है।[४] महाकवि कालिदास के मेघदूत काव्य के अनेक जैन टीकाकार सरगुजा के रामगिरि को ही चित्रकूट का उपलक्षक मानते हैं।

रामगिरि या रामगढ़

रागगिरि पहाड़ी के ऊपरी भाग पर तीन मंदिर भग्नावस्था में देखने को मिलते हैं। पहला मंदिर वरुण देव का कहा जाता है। दूसरा मंदिर नष्ट हो चुका है। तीसरा मंदिर किले के अंतिम भाग पर पत्थरों से निर्मित किया गया है। मंदिर में प्रयुक्त चौकोर पाषाणखण्डों पर अंकित अशोककालीन चक्र और जैन तीर्थंकरों के श्रीवत्स चिन्ह आज भी पाये जाते हैं। अनेक स्थानों पर जैन मूर्तियों के परिकर, तोरण, कलश, यक्ष-यक्षियों की मूर्तियाँ, कमल आदि स्तंभों पर उत्कीर्ण हैं। जैन तीर्थंकरों के श्रीवत्स चिन्ह इस अंचल में जैनधर्म के प्रभाव के अकाट्य साक्ष्य हैं तथा प्राचीन जैनमंदिर के अस्तित्व की ओर संकेत करते हैं। ये तथ्य इस सत्य को भी रेखांकित करते हैं कि प्राचीन काल में पहाड़ों को काटकर चैत्य, विहार और मंदिर बनाने की प्रथा थी। यहाँ से १० कि.मी. दूर रेणु नदी के दायें तट पर स्थित ग्राम महेशपुर है, जहाँ प्राचीन खण्डित सभ्यता और संस्कृति को समाये लगभग १७-१८ टीले विद्यमान हैं, जिनमें अनेक प्राचीन खण्डित प्रस्तर मूर्तियाँ, ध्वस्त मंदिरों के विशाल एवं अलंकृत पाषाण खण्ड एवं कला कृतियाँ हैं। ग्राम के ५ कि.मी. क्षेत्र में सारी पुरातात्त्विक सामग्री फैली हुई है। यहाँ जैन, वैष्णव तथा शैव सम्प्रदाय के छोटे-बड़े ३० मंदिर भग्नावस्था में हैं। यहीं १०वीं शताब्दी की जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की पद्मासन में आसीन एवं अलंकृत दुर्लभ प्रतिमा प्राप्त हुई है। वर्तमान में यह मूर्ति एक पीपल के वृक्ष के नीचे निर्मित चबूतरे पर आसीन है। उल्लेखनीय है कि महेशपुर के राजा प्राचीन काल में जब भगवान् आदिनाथ की इस प्रतिमा को हाथी पर लदवाकर अपने महल ले जा रहे थे, तो मध्य रास्ते में हाथी इसी स्थल पर आकर बैठ गया, जहाँ वर्तमान में यह प्रतिमा रखी हुई है। आसपास उपलब्ध जैन प्रतीकों से यहाँ एक से अधिक जैन मंदिरों का अस्तित्व प्रमाणित होता है। महेशपुर के जैन मंदिर का संबंध रामगढ़ की जोगीमारा गुफा से भी जोड़ा जाता है। इस अंचल से निर्ग्रन्थ साधुसंघ या जैन तीर्थयात्रियों की श्री सम्मेदशिखर जी की तीर्थयात्रा को ध्यान में रखते हुए भी यह निष्कर्ष बड़ी सहजता से निकाला जा सकता है कि देवदर्शन एवं विश्रामस्थलों के रूप में रामगढ़ और महेशपुर का चयन विशेषरूप से जैन परम्परानुसार विकास हेतु किया गया हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत: इसमें कोई संदेह नहीं कि रामगढ़ पर्वत पर एवं आसपास प्राचीन काल में जैन मंदिरों का निर्माण किया गया था तथा यहाँ जैन बस्तियाँ थीं। यह अवश्य है कि कालांतर में धर्मद्वेषी राजाओं एवं विधर्मियों ने जैन मंदिरों का विनाश कर दिया और इसके फलस्वरूप यहाँ से जैनों को प्राण-रक्षार्थ पलायन करना पड़ा। आज भी इस स्थिति में कोई अंतर नहीं आया है।

उपर्युक्त प्रमाण से प्रमाणित होता है कि जैनधर्म का प्रभाव सरगुजा के वनांचल पर रहा है तथा जैन संस्कृति के संदेशवाहक के रूप में रामगिरि एक बहुचर्चित केन्द्र रहा है।

जोगीमारा गुफा के प्राचीनतम जैन भित्ति चित्र

विश्व में जितने भी प्राचीन कला के उदाहरण हैं, वे प्राय: भित्ति चित्रों के हैं। उस काल में धार्मिक स्थानों, जैसे गुफाओं या देवमंदिरों में भी विभिन्न सम्प्रदायों के महापुरुषों की विशिष्टतम एवं उत्प्रेरक घटनाएँ व अन्य सांस्कृतिक चिन्ह चित्रांकित किये जाते थे। ऐसी गुफाओं में सबसे अधिक प्राचीन एवं प्रसिद्ध गुफा रामगढ़ की जोगीमारा गुफा है। रामगढ़ की सीताबोंगरा गुफा के निकट ही यह गुफा है। यह ३० फुट लम्बी और १५ फुट चौड़ी है। गुफा का द्वार पूर्व की ओर है। इसमें भारतीय भित्तिचित्रों के सबसे प्राचीन नमूने अंकित हैं। भित्तिचित्रों के अधिकांश भाग मिट गये हैं और सदियों की नमी ने भी उन्हें काफी प्रभावित किया है। इन चित्रों की पृष्ठभूमि धार्मिक है। इनमें धर्म और कला का अनुपम स्थान है। अति प्राचीन और भारतीय तक्षणकला की उत्कृष्ट मौलिक सामग्री भी इन चित्रों में पाई जाती है।

डॉ. रायकृष्णदास के मतानुसार यहाँ की चित्रकला का संबंध जैनधर्म से माना जाता है, क्योंकि इनमें से कुछ चित्रों का विषय जैन था। इनमें पद्मासन लगाये एक व्यक्ति का चित्र पाया जाता है। पद्मासन जैन तीर्थंकरों की एक विशेष मुद्रा है। बौद्धों में इस मुद्रा का विकास बहुत काल बाद में हुआ है। चित्रों के निम्न भाग में एक चैत्याकार आगार है, जिसमें खिड़की स्पष्ट है। इन चित्रों को कलिंग शासक खारबेल ने बनवाया था, जो स्वयं जैन धर्मावलम्बी राजा था। ये कलात्मक भित्तिचित्र जैनधर्म के प्राचीन इतिहास एवं सांस्कृतिक चरणों के उस काल के महत्त्वपूर्ण प्रमाण हैं, जिनसे होकर यह क्षेत्र गुजरा है। उस समय जैन प्रतिमाएँ भी नगर के बाहर गुफाओं में अवस्थित रहा करती थीं। विद्वानों के मतानुसार इन धर्ममूलक भित्तिचित्रों से अशिक्षित भी प्रेरणा पाकर धर्मगत रहस्य को आत्मसात् कर सकते थे। इसलिए जैनों ने इस प्राचीन प्रथा का खूब विकास किया और आज तक इस पद्धति को सुरक्षित भी रखा है।

जोगीमारा गुफा के ये जैन भित्तिचित्र न केवल ऐतिहासिक महत्त्व के हैं, बल्कि ये तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक जीवन को भी रेखांकित करते हैं। इस वर्ग के उदाहरण भारत में अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होते। मुनि कान्तिसागर ने सरगुजा की जोगीमारा गुफा की जैनाश्रित चित्रकला का एक पुरातन चित्र अपनी कृति 'खोज की पगडंडियाँ' में प्रकाशित किया है, जो उन्हें छत्तीगढ़ के पुरातत्त्व साधक श्री लोचनप्रसाद पाण्डेय से प्राप्त हुआ था। इसका उल्लेख उन्होंने अपने आत्मवक्तव्य में दिया है।[५]

डॉ. ब्लाख के अनुसार इस गुफा में उपलब्ध प्राकृत-भाषा में उत्कीर्ण शिलालेख ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी का है। इससे यह प्रमाणित होता है कि उन दिनों सरगुजा के इस भू-भाग पर श्रमणसंस्कृति का प्रभाव था। इतना ही नहीं, यहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही आकर्षक और शान्तिप्रदायक होने के कारण लोकवासी प्रवचन, व्याख्यान एवं अमृतवाणी का पान करने इस वनाच्छादित पहाड़ी की गुफा में आया करते थे।

सरगुजा की यह भूमि दिगम्बरजैन मुनियों की तपस्या से पवित्र, अनेक धर्मनिष्ठ यात्रियों की भक्ति से पूजित एवं खारबेल और सम्प्रति जैसे जैन धर्मावलम्बी सम्राटों के कारण प्राचीन इतिहास में अपना एक विशिष्टस्थान रखती है। सच तो यह है कि जैनियों के लिए आज भी रामगढ़ पहाड़ी एक पुरातन पवित्र तीर्थ की महिमा और गरिमा लिए हुये है।

सन्दर्भ

१. (i)मध्यप्रदेश जिला गजेटियर : सरगुजा : डा. राजेन्द्र वर्मा, १९९८, भोपाल, पृ. ३६।
(ii) मध्यप्रदेश और बरार का इतिहास : योगेन्द्रनाथ शील, १९२२, प्रयाग, पृ. २६८।
२. श्री रविषेणाचार्य विरचित पद्मपुराण, १९७४, देहली, पृ.३७९।
३. (i) जर्नल आफ दि इंडियन हिस्ट्री, भाग ४२, पृ. ६५।
(ii) स्टडीज इन इन्डोलाजी, भाग ४, पृ.४२।
४. छत्तीसगढ़ में जैन धर्म की परम्परा एवं इतिहास : डा. कुन्तल गोयल (अप्रकाशित पाण्डुलिपि)।
५. खोज की पगडंडियाँ : मुनि कान्तिसागर, १९५३, काशी, पृ.१६,११४।

मनीषा भवन, चोपड़ा कालोनी
अम्बिकापुर- 497 001
(सरगुजा, छत्तीसगढ़)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरताष्टकम्

(उपजाति छन्द)

मुनि श्री प्रणम्यसागर जी

१

आकुञ्चितस्निग्धभुजङ्गकेशं, संपाटयन्नाशु निसर्गभेषम्।
संप्राप्तकाले समवापबोधं, नाभेयजं तं भरतं यजेऽहम्॥

अनुवाद- नाभेय (आदिनाथ) के पुत्र भरत भगवान् की मैं पूजा करता हूँ जिन्होंने घुंघराले, चिकने और सर्पसदृश काले-काले बालों को उखाड़ते हुए शीघ्र ही निसर्ग (यथाजात) भेष की प्राप्ति के समय केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था।

२

आद्यस्य तीर्थाधिपतेर्युगादौ, वाद्योहिसूनुः पृथुसानुरद्रौ।
आद्यश्च चक्री खलु चक्रभृत्सु, नाभेयजं तं प्रणमामि सत्सु॥

अनुवाद - युग के आदि में आदितीर्थंकर के जो आदिपुत्र थे, जो पर्वत की विशाल चोटी के समान थे तथा होने वाले सभी चक्रवर्तियों में जो स्पष्ट ही प्रथम चक्री थे, उन नाभेय से उत्पन्न भरत भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

३

षट्खण्डभूमेर्विजयी किलाले! निखातनामा वृषभाख्यशैले।
यन्नामतो भारतवर्ष कीर्तिर्नाभेयजातस्य जयेत्सुकीर्तिः॥

अनुवाद - अहो सखे! जो षट्खण्डभूमि के विजेता थे, जिनका नाम वृषभ नामके पर्वत पर उकेरा गया था और जिनके नाम से ही इस भारतवर्ष की कीर्ति है, ऐसे नाभेय के पुत्र (भरतदेव) की शुभ कीर्ति सदैव जयवन्त रहे।

४

संस्थापितं येन तुरीयवर्णं, वर्णेन रूढिं लभते सुवर्णम्।
अष्टापदेऽकारि च चैत्यगेहं, नाभेयजं तं भरतं यजेऽहम्॥

अनुवाद- जिन्होंने चतुर्थवर्ण (ब्राह्मण वर्ण) की स्थापना की थी, जिनके स्वर्ण समान शरीर के वर्ण से ही स्वर्ण-सुवर्ण इस रूढ़ि को प्राप्त होता है तथा जिन्होंने अष्टपद पर चैत्यगृहों का निर्माण किया था, उन नाभेय से उत्पन्न भरत भगवान् की मैं पूजा करता हूँ।

५

चक्रच्छलेनैव जयस्यलक्ष्मीर्ययौ पुरस्तात् क्रमयोर्विधेश्च।
ललाटपट्टे तु बबन्ध पट्टं, बुद्धेः प्रवन्दे भरतक्रमे च॥

अनुवाद- चक्र के छल से मानो विजय की लक्ष्मी ही आगे चली थी, भाग्य की लक्ष्मी चरणों के आगे-आगे चली थी और बुद्धि की लक्ष्मी ने तो ललाट-पट्ट पर पट्ट ही बांध दिया था, ऐसे भरतदेव के चरणों में मेरी प्रकृष्ट वन्दना है।

६

कैलासशैलं पुरुपादपूतं, शुभ्रं विशालं वृषमेव रूढम्।
तमारूरूक्षुर्निकटं मुमुक्षुर्नाभेयजं तं परिणौमि मंक्षु॥

अनुवाद- जो कैलासपर्वत भगवान् आदिनाथ के चरणों से पवित्र हुआ था, जो शुभ्र था, विशाल था तथा जो उच्च बैल के समान ख्यात था, उस पर वह निकट मुमुक्षु शीघ्र ही चढ़ने की इच्छा करते थे अर्थात् वह बार-बार भगवान् के दर्शन को जाते थे, ऐसे नाभेय पुत्र भरतदेव को मेरा नमस्कार हो।

७

संसारवार्धौ विनिमग्नताया, हेतुर्विदु वैभवलुब्धताया।
तथापि यः पङ्कजवद्व्यलिप्तः, तं संस्तुमो वो गृहसंस्थमुक्तः॥

अनुवाद - जो वैभव की लुब्धता संसार सागर में डूबने का हेतु कही गयी है उसके होते हुए भी जो कमल के समान निर्लिप्त थे और जो सभी के लिये गृह में रहते हुए भी मुक्त थे, उन भरतदेव की मैं स्तुति करता हूँ।

८

द्रष्टाऽऽर्कचैत्यस्य यथेष्टदाता, शारीरदण्डस्य च यो विधाता।
मेरोरिवाभाज्जिनराट्सभायां, शुद्ध्याऽर्चयेऽहं भरतं पृथिव्याम्॥

अनुवाद- जिन्होंने अपने महल से सूर्य में स्थितचैत्य के दर्शन किये, जो 'हा, माधिक के बाद कर्मभूमि में प्रचलित शारीरिकदण्ड के विधाता थे, जो जिनेन्द्रदेव की सभा में पृथ्वी पर मेरू के समान शोभित हुए थे, उन भरतदेव की मैं शुद्धि पूर्वक अर्चना करता हूँ।

९

(मालिनी छन्द)

इति सुखयति कामं भुक्तिमुक्तिप्रदानं
तव गुणगणगानं भव्यजीवैकयानम्।
सततनवसुभावैर्नन्नमीमीष्टदं वै
विधिहतवरमल्लं भारतेशं प्रणम्यम्॥

अनुवाद- इसप्रकार आपके गुण-समूह का गान अत्यधिक सुख देनेवाला है, अभ्युदय सुख और मुक्ति का देनेवाला है तथा भव्य जीवों के लिये संसार से पार जाने के लिये यान के समान है। इष्ट वस्तु को देनेवाले, कर्म को नाश करने में श्रेष्ठ मल्ल तथा प्रणाम के योग्य भरतदेव को मैं नित नवीन उत्कृष्ट भावों के साथ निश्चय से बार-बार नमस्कार करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

पं.बसंत कुमार जी शिवाड़

जिज्ञासा- क्या निधत्ति-निकाचितपना केवल अशुभ प्रकृतियों में ही होता है या शुभ में भी?

समाधान- इस जिज्ञासा के समाधान में गोम्मटसार कर्मकांड की गाथा नं. 441 द्रष्टव्य है।

संकमणाकरणूणा, णवकरणा होंति सव्वआऊणं।
सेसाणं दसकरणा, अपुव्वकरणोत्ति दसकरणा ॥

अर्थ-चारों आयु में, संक्रमण करण के बिना 9 करण पाये जाते हैं, क्योंकि चारों आयु परस्पर में परिणमन नहीं करतीं। शेष बन्धयोग्य सर्व प्रकृतियों में दश करण होते हैं तथा मिथ्यात्व से अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त तो दशों करण पाये जाते हैं।

उपरोक्त गाथा के अनुसार कर्मों की सभी प्रकृतियों में निधत्ति और निकाचितपना पाया जाता है। जनसामान्य में ऐसी धारणा बनी हुई है कि निधत्ति और निकाचितपना तीव्र कषाय के कारण होता है और वह अशुभ प्रकृतियों में ही होता है। परंतु उपरोक्त शास्त्रीय प्रमाण के अनुसार यह धारणा ठीक नहीं है। शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की प्रकृतियों में निधत्ति और निकाचितपना पाया जाता है जो अनिवृत्तिकरण परिणामों द्वारा नाश हो जाता है।

जिज्ञासा- क्या दूरान्दूर भव्य कभी रत्नत्रय का पालन कर सकता है?

समाधान- दूरान्दूर भव्यों को आगम में अभव्यसमभव्य नाम से कहा गया है। ये वे भव्य हैं जिनकी आत्मा में रत्नत्रय प्राप्त करने की शक्ति तो होती है परन्तु तद्योग्य निमित्त न मिलने के कारण जिनको अनन्तानन्त काल में भी रत्नत्रय की प्राप्ति संभव नहीं है। श्री राजवार्तिक 1/3/9 में इस प्रकार कहा है-

केचिद् भव्याः संख्येयेन कालेन सेत्स्यन्ति केचिदसंख्येयेन, केचिदनन्तेन, अपरे अनन्तानन्तेनापि न सेत्स्यन्तीति।

अर्थ- कोई भव्य संख्यातकाल में, कोई असंख्यात काल में, कोई अनन्त काल में मोक्ष नहीं जायेंगे।

भावार्थ- जो भव्य संख्यातकाल व असंख्यातकाल में मोक्ष जायेंगे उनको निकट भव्य कहते हैं। जो अनन्त काल में मोक्ष जायेंगे उनकों दूर भव्य और जो अनन्तानन्त काल तक भी मोक्ष नहीं जायेंगे उनको अभव्यसमभव्य अथवा दूरातीदूर भव्य कहा जाता है।

श्री षट्खंडागम 7/176-177 में इस प्रकार कहा है:- दूरातीदूर भव्य को सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है। उनको भव्य इसलिए कहा गया है क्योंकि उनमें शक्तिरूप से तो संसारविनाश की संभावना है किंतु उसकी व्यक्ति कभी नहीं होगी।

यह भी विशेष है कि समस्त दूरातीदूर भव्य या अभव्यसमभव्य नित्यनिगोद में ही हैं और अनन्तानन्त काल तक नित्यनिगोद में ही रहेंगे। जिसके कारण भव्य होते हुये भी रत्नत्रय प्राप्ति के योग्य कोई निमित्त न मिलने से उनको कभी भी रत्नत्रय की प्राप्ति संभव नहीं है।

जिज्ञासा- असंक्षेपाद्धाकाल किसे कहते हैं ?

समाधान- भोगभूमिया जीव एवं देव और नारकीयों के भुज्यमान आयु के 6 माह शेष रहने पर तथा अन्य सभी जीवों के आयु का 1/3 भाग शेष रह जाने पर आयुबंध के योग्य 8 अपकर्षकाल आते हैं। जिन जीवों के इन 8 अपकर्षकालों में आयुबंध नहीं हो पाता है उनके भुज्यमान आयु के असंक्षेपाद्धाकाल शेष रह जाने पर परभविक आयु बंध नियम से हो जाता है। असंक्षेपाद्धाकाल की परिभाषा गोम्मटसार कर्मकांड गाथा 158 की टीका में इस प्रकार कही है:-

न विद्यते अस्मादन्यः संक्षेपः, स चासौ अद्धा च असंखेपाद्धा, आवल्यसंख्येयभागमात्रत्वात्।

अर्थ- जिससे संक्षिप्त आयुबंध काल और न हो ऐसे आवली के असंख्यातवें भाग मात्र को असंक्षेपाद्धाकाल कहते हैं अर्थात् भुज्यमान आयु के अंत में जब मात्र आवली के असंख्यातवें भागमात्र आयु शेष रहती है तब उसे असंक्षेपाद्धाकाल कहते हैं। इतनी आयु शेष रहने पर प्रत्येक जीव के परभव संबंधी आयु के बंध होने का नियम है।

जिज्ञासा- मुझे कुत्ते एवं बिल्ली पालने का शौक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ लोग इसे गलत बताते हैं जबकि मेरे कुत्ते, बिल्ली शाकाहारी हैं। इस संबंध में शास्त्र क्या कहते हैं, बताइये।

समाधान- कुत्ते, बिल्ली पालने को शास्त्रों में पाप का कारण एवं निषिद्ध कहा है कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं:-

1. सर्वार्थसिद्धि 7/21 में अनर्थदण्ड की परिभाषा बताते हुए इसप्रकार कहा है- असत्युपकारे पापादान हेतु: अनर्थदण्ड:। उपकार न होकर जो प्रवृत्ति पाप का कारण है उसे अनर्थदण्ड कहते हैं। अनर्थदण्ड के भेदों में एक भेद हिंसादान भी कहा गया है जिसकी परिभाषा कार्तिकेयानुप्रेक्षा में इसप्रकार कही है:-

मज्जार-पहुदि धरणं आउह-लोहादि-विक्कणं जं च।
लक्खा खलादि गहणं अणत्थ-दण्डो हवे तुरिओ ॥347॥

अर्थ- बिलावादि हिंसक जन्तुओं का पालना, लोहे तथा अस्त्र-शस्त्रों का देना-लेना और लाख, विष आदि का लेना-देना चौथा हिंसादान अनर्थदण्ड है।

भावार्थ- इस गाथा में बिलाव आदि हिंसक जन्तुओं को पालना अनर्थदण्ड कहा है।

2. तत्त्वार्थसार 4/33 में इस प्रकार कहा है-

मार्जारताम्रचूडादिपापीय: प्राणिपोषणम्।
नै: शील्यं च महारम्भपरिग्रहतया सह॥33॥

अर्थ- बिल्ली, कुत्ते, मुर्गे इत्यादि पापी प्राणियों का पालना, शीलव्रतरहित रहना और आरंभ तथा परिग्रह को अति बढ़ाना नरकायु के आस्रव के कारण हैं।

उपरोक्त श्लोकों में कुत्ते, बिल्ली आदि को पालना नारकायु का आस्रव कहा है। आपका कुत्ता चाहे आपके द्वारा शाकाहारी समझा जाता हो परन्तु वह त्रस जीवों को मारने एवं गंदे स्थानों पर जाने से नहीं चूकता। अत: कुत्ते-बिल्ली आदि पापी प्राणी ही हैं और इनको पालना आगम में निषिद्ध है। पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी ने अपने प्रवचन में कहा था कि जिन घरों में कुत्ते-बिल्ली आदि हिंसक प्राणी पाले जाते हैं, वे घर मुनि के आहार के योग्य नहीं हैं। अत: धार्मिक दृष्टि के अनुसार आपको ऐसे हिंसक जन्तुओं का पालन नहीं करना चाहिए।

3. श्री आदिपुराण सर्ग 10 में इसप्रकार कहा है:-

वधकान् पोषयित्वान्यजीवानां येऽतिनिर्घृणा:।
खादका मधुमांसस्य तेषां ये चानुमोदका:॥26॥

अर्थ- जो मधु और मांस खाने में तत्पर हैं, अन्य जीवों की हिंसा करने वाले कुत्ते-बिल्ली आदि पशुओं को पालते हैं, अतिशय निर्दय हैं। वे जीव पाप के भार से नरक में प्रवेश करते हैं।

जिज्ञासा- शुद्ध द्रव्यों में उत्पाद व्यय किस प्रकार होता है ?

समाधान- शुद्ध द्रव्यों में उत्पाद व्यय के संबंध में श्री सर्वार्थसिद्धि 5/7 की टीका में इस प्रकार कहा है:-

क्रियानिमित्तोत्पादाभावेऽप्येषां धर्मादीनामन्यथोत्पाद: कल्प्यते। तद्यथा-द्विविध उत्पाद: स्वनिमित्त: परप्रत्ययश्च। स्वनिमित्तस्तावदनन्तानामगुरूलघुगुणामनामागमप्रामाण्याद-भ्युपगम्यमानानां षट्स्थानपतितया वृद्ध्या हान्या च प्रवर्तमानानां स्वभावादेतेषामुत्पादो व्ययश्च। परप्रत्ययोऽपि अश्वादि गतिस्थित्यवगाहनहेतुत्वात् क्षणे क्षणे तेषां भेदात्तद्धेतुत्वमपि भिन्नमिति परप्रत्ययापेक्ष उत्पादो विनाशश्च व्यवह्रियते।

अर्थ- धर्मादिक द्रव्यों में क्रियानिमित्तक उत्पाद नहीं है तो भी इनमें अन्य प्रकार से उत्पाद माना गया है। यथा- उत्पाद दो प्रकार का है, स्वनिमित्तक उत्पाद और परप्रत्यय उत्पाद। स्वनिमित्तक यथा- प्रत्येक द्रव्य में आगम से अनन्त अगुरूलघुगुण (अविभाग प्रतिच्छेद) स्वीकार किये गए हैं, जिनका छहस्थानपतित वृद्धि और हानि के द्वारा वर्तन होता रहता है, अत: इनका उत्पाद और व्यय स्वभाव से होता है। इसीप्रकार पर प्रत्यय का भी उत्पाद और व्यय होता है। यथा- ये धर्मादिक द्रव्य क्रम से अश्वादि की गति, स्थिति और अवगाहन में कारण हैं, चूंकि इन गति आदिक में क्षण क्षण में अंतर पड़ता है इसीलिए इनके कारण भी भिन्न-भिन्न होने चाहिए, इसप्रकार इन धर्मादिक द्रव्यों में प्रत्यय की अपेक्षा उत्पाद और व्यय का व्यवहार किया जाता है। सभी शुद्ध द्रव्यों में इसीप्रकार दो तरह से उत्पाद -व्यय मानना योग्य है।

जिज्ञासा- क्या पारिणामिक भाव भी शुद्ध-अशुद्ध दो प्रकार के होते हैं? आगम प्रमाण से समझायें।

समाधान- बृहद् द्रव्यसंग्रह गाथा 13 की टीका में श्री ब्रह्मदेवसूरी ने पारिणामिक भाव के शुद्ध अशुद्ध भेद बताते हुए इसप्रकार कहा है:-

शुद्ध पारिणामिक भावों की अपेक्षा से गुणस्थान और मार्गणा का निषेध किया था, परंतु यहाँ भव्यत्व और अभव्यत्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के दो अशुद्ध पारिणामिक भावरूप होने से मार्गणा के कथन में घटित होते हैं। यदि इसप्रकार कहा जाये कि "शुद्ध और अशुद्ध के भेद से पारिणामिक भाव दो प्रकार का नहीं है परंतु एक शुद्ध ही है" तो ऐसा नहीं है। यद्यपि सामान्यरूप से उत्सर्ग व्याख्यान से शुद्ध पारिणामिक भाव कहा जाता है तो भी अपवाद व्याख्यान से अशुद्ध पारिणामिक भाव भी है। जैसे- 'जीव भव्याभव्यत्वानि च' इसप्रकार त. सूत्र में जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्वरूप तीन प्रकार पारिणामिक भाव कहा है। वहाँ शुद्ध चैतन्यरूप जीवत्व, अविनश्वरपने के कारण शुद्ध द्रव्य के आश्रित होने 'शुद्ध द्रव्यार्थिक' ऐसी संज्ञा वाला शुद्ध पारिणामिक भाव कहलाता है और जो कर्मजनित दसप्राणरूप जीवत्व, भव्यत्व औरं अभव्यत्वरूप से तीन हैं वे विनश्वरपने के कारण पर्यायार्थिक होने से 'पर्यायार्थिक' ऐसी संज्ञा वाले अशुद्ध पारिणामिक भाव कहलाते हैं।

प्रश्न- अशुद्धपना कैसे है ?

उत्तर- यद्यपि ये तीन अशुद्ध पारिणामिक भाव व्यवहार से संसारी जीव में हैं तो भी "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" (शुद्ध नय से सर्व संसारी जीव वास्तव में शुद्ध हैं), इस वचन से शुद्धनिश्चयनय की अपेक्षा से (संसारी जीव में) ये तीनों भाव नहीं हैं और मुक्त जीव में तो सर्वथा नहीं हैं, इस हेतु से अशुद्धपना कहलाता है। यहाँ शुद्ध और अशुद्ध पारिणामिक भावों में से शुद्ध पारिणामिक भाव ध्यान के समय ध्येयरूप होता है, क्योंकि ध्यान पर्याय विनश्वर है और शुद्ध पारिणामिक भाव तो द्रव्यरूप होने से अविनश्वर हैं, ऐसा भावार्थ है।

भावार्थ- उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि संसारी जीव में दसप्राणरूप जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन अशुद्ध पारिणामिक भाव हैं और मुक्त जीवों में जीवत्वरूप शुद्ध पारिणामिक भाव पाया जाता है। इस तरह पारिणामिक भावों के शुद्ध और अशुद्ध दो भेद स्पष्ट हैं।

1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा (उ.प्र.)

प्रचार-प्रसार-सहयोग

अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि '**जिनभाषित**' की लोकप्रियता तथा विशिष्ट शैली को देखकर निम्नलिखित महानुभावों ने सहर्ष, स्वेच्छा से इस पत्रिका के प्रचार-प्रसार में अपना सहयोग देने का संकल्प लिया है।

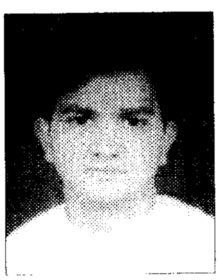

ब्र. पं. राजकिंग जैन प्रोशेसन रोड, पुराना बाजार, अशोकनगर (म.प्र.)
फोन 09329276951

आप स्व. श्री राजेन्द्रकुमार जी जैन के सुपुत्र हैं। आप पू.आ. विद्यासागर जी के परम भक्त हैं। अभी युवा एवं अविवाहित हैं। वर्तमान में संगीत में एम.ए. कर रहे हैं। आपने धार्मिक शिक्षण श्री वर्णी दि. जैन गुरुकुल जबलपुर में लिया है। विधान कराने तथा संस्कार शिविर आदि लगाने में आप दक्ष हैं। आकाशवाणी से आपके भजनों का प्रसारण होता रहता है। सुमधुर वाणी द्वारा सबको मोहित करने में आप कुशल हैं।

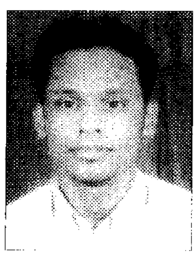

पं. राहुल जैन, द्वारा श्री ऋषभ कुमार जी जैन होली का मैदान, पुराना बाजार, पिपरई (जिला- अशोकनगर) म.प्र.
फोन 07548-224706

आप श्री ऋषभ कुमार जी के सुपुत्र हैं। आपने धार्मिक व शिक्षा श्री वर्णी दि. जैन गुरुकुल जबलपुर में प्राप्त की है। आपका शौक संगीत एवं काव्यरचना है। आप पू. आ. विद्यासागर जी महाराज के परम भक्त हैं।

डॉ. अनेकान्त कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिसर इन्दौर में दि. 14 जनवरी 06 को आयोजित पुरस्कार **समर्पण** समारोह में वर्ष 2004 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार डॉ. अनेकान्त कुमार जैन, नई दिल्ली को उनके शोध प्रबन्ध '**दार्शनिक समन्वय की दृष्टि नयवाद**' पर प्रदान किया गया। डॉ. अनेकान्त नई दिल्ली स्थित श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) में जैनदर्शन विभाग में वरिष्ठ व्याख्याता हैं।

डॉ. हरेराम त्रिपाठी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके पत्र

'**जिनभाषित**' का दिसम्बर २००६ का अंक महत्त्वपूर्ण एवं संग्रहणीय है। सम्पादकीय अतिखोजपूर्ण एवं न केवल सामयिक, किन्तु एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। '**दिगम्बर परम्परा को मिटाने की सलाह**' देनेवालों की आँखों और आस्था पर खोट निर्धारित की है। गाँधी जी एवं चम्पतराय जी का पत्रव्यवहार अपना खास महत्त्व रखता है। सेन्ट पाल की '**कुछ चीजें कानून-सम्मत होते हुए भी उचित नहीं होतीं**' यह सारपूर्ण बात आज जनतंत्र राज्य पर सही उतरती है। एक ही गणराज्य में परस्परविरोधी कानून बने हैं और बन रहे हैं। हमारे भाई श्री अजित टोंग्या ने अपनी स्वयं प्रकाशित काली पुस्तक में कानून को 'राजाज्ञा' कहा है। आज राजा कहाँ है? जनता के राज में (राजा के राज में नहीं) सत्तासीन जन-प्रतिनिधि राज्य के कानून अपने ध्येय, धारणा तथा मान्यता के अनुसार बनाते हैं। राजाज्ञा तो अहिंसा, सत्य, अचौर्य आदि धर्मों पर आधारित होती थी। अब न राजा है और न राजाज्ञा, अब कानून है। यही नहीं, एक ही गणतंत्र में भूगोल की एवं समय की सीमा में कानून बदलते हैं और भिन्न-भिन्न हैं, जैसे जैन किसी प्रदेश में अल्पसंख्यक माने गये हैं और किसी प्रदेश में नहीं तथा केन्द्र सरकार चुप है।

पुरातत्त्व-संबंधी कानून एक मखौल बनकर रह गया। कुण्डलपुर के प्रकरण में यह स्वयं Antiquity बनकर रह गया।

अन्य लेख '**संतो की आड़ में खेल न खेलें**' तथा '**मिथ्याप्रचार से सावधान**' आज जैन समाज की दुर्दशा पर प्रहरी का रोल अदाकर रहे हैं, सतर्कता का संदेश दे रहे हैं।

आज देश में जिसकी लाठी उसकी भैंस का राज्य है। अलग-अलग राजनैतिक मान्यतों का शासन भिन्न-भिन्न प्रान्तों में है। अब 'राजाज्ञा' की क्या व्याख्या होगी?

आपको साधुवाद।

अमरचंद जैन
महावीर उदासीन आश्रम
कुण्डलपुर (दमोह) म.प्र.

अत्र स्वाध्यायामृतपानबलेन कुशलं तत्राप्यस्तु

धर्मबन्धुवर! दिसम्बर २००६ का '**जिनभाषित**' मिला। पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई कि आपने '**दिगम्बर जैन परम्परा को मिटाने की सलाह**' शीर्षक से श्रेष्ठ संपादकीय लिखा, जिसमें आपने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के विचारों से (कि दिगम्बरजैन मुनियों को नग्नावस्था में शहर में प्रवेश नहीं करना चाहिए) सहमति दर्शानेवाले आधुनिक विद्वान् डॉ॰ अनंगप्रद्युम्न कुमार, श्री जमनालाल जैन, सुश्री लीना विनायकिया तथा डॉ॰ अनिलकुमार जैन को सत्तर्क विवेचना द्वारा '**नग्नत्व निर्विकारत्व का प्रतीक**' सिद्धकर पुनः विचार करने को बाध्य किया तथा '**शोधादर्श**' के सम्पादक को सोचने एवं अपनी भूल सुधारने हेतु मजबूर किया। उन्होंने कैसे '**शोधादर्श**' (मार्च ०५) में महात्मा गाँधी के '**नवजीवन**' (०५/१९३१) में प्रकाशित लेख को (इस टिप्पणी के साथ कि उनके विचार वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामयिक और समीचीन प्रतीत होते हैं।) छाप दिया !! अहो! हन्त महाश्चर्यम्! "**कालः कलिर्वाकलुषाशयो वा**" (युक्त्युनशासन, ५)।

क्या वर्तमान काल में कोई अर्हद्‌बलि आचार्य की तरह सर्व दिगम्बर मुनिराजों का एक सिद्धक्षेत्र/तीर्थक्षेत्र-विशेष पर सम्मेलन बुलाकर उन्हें समझा सकता है कि वे केवली/श्रुतकेवलियों द्वारा प्ररूपित तत्त्वों एवं आचारसंहिता का उल्लंघन न करें, न करने दें? आ. कुन्दकुन्द के मूल आम्नाय को अभी तो १८५०० वर्ष तक जीवन्त रहना है। यह जिम्मेदारी हम, आप सभी की है।

आपने इसी अंक में **गाँधी जी और बैरिस्टर चम्पतराय जी के पारस्परिक पत्रों को छापकर एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक दस्तावेज प्रस्तुत किया है।** मैं बैरिस्टर चम्पतराय जी, ब्र. शीतलप्रसाद जी, डॉ॰ ज्योतिप्रसाद जी आदि २०वीं शताब्दी के धर्मरक्षक, समाजपथ-प्रदर्शक उद्‌भट विद्वानों का बहुत-बहुत उपकार मानता हूँ कि उन्होंने दिगम्बरत्व के महत्त्व को अँग्रेजों के शासनकाल में भी कम नहीं होने दिया। इस अंक के सभी लेख विशेषकर स्व॰ डॉ॰ ज्योतिप्रसाद जी का '**दिगम्बरत्व का महत्त्व**' एवं डॉ॰ सागरमल जी जैन का '**समाधिमरण : तुलना एवं समीक्षा**' भी ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश डालने वाले महत्त्वपूर्ण लेख हैं।

शुद्ध-तेरापंथाम्नाय-पोषक '**विद्वज्जनबोधक**' (लेखक पं॰ पन्नालालजी संघी, दूनी-राजस्थान जो कि पं॰ श्री सदासुखदास जी के शिष्य थे) ग्रन्थ का प्रकाशन व वितरण तत्काल होना चाहिए। यह ग्रन्थ मैंने वर्षों पूर्व भोपाल के ही किसी शास्त्रभण्डार में देखा था, पढ़ा था, परन्तु अभी कहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर भी उपलब्ध नहीं है। यदि आपकी जानकारी में हो, तो अवश्य ही सूचित करें, जिससे उसके प्रकाशन की व्यवस्था बाबत निर्णय लिया जा सके, या कोई जिनवाणी भक्त उसे स्वयं अपनी ओर से प्रकाशित कर दे। शेष क्षेम,

हेमचन्द्र जैन 'हेम'
कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, कहान नगर,
लामरोड, देवलाली (नासिक)

जिनभाषित का दिसम्बर २००६ का अंक सामने है। जब भी अंक सौभाग्य से पढ़ने मिल जाता है, पूरा अंक पढ़कर ही पढ़ने का लोभसंवरण कर पाता हूँ।

नूतन वर्ष २००७ की बेला पर '**दिगम्बर जैन परम्परा को मिटाने की सलाह**' सम्पादकीय ने निश्चित ही अनेक लोगों की तन्द्रा को भंग किया होगा तथा अनेक लोगों की शंकायें भी समाप्त हुई होंगी। निश्चित ही दिगम्बर मुनि हमारे आराध्य हैं और उनके नग्नत्व पर जैन समाज द्वारा ही सवाल उठाना हास्यास्पद है। आपने प्रामाणिक तथ्यों के साथ सम्पादकीय लिखकर नये वर्ष पर एक अच्छी पहल की है। निश्चित ही यह सम्पादकीय जैन समाज में नया चिंतन लायेगी और दिगम्बर मुनि को कपड़े पहनाने की राय देनेवालों को भी सबक मिलेगा।

'**आओ एक अभियन चलाएँ**' भाई शैलेष शास्त्री का रात्रिभोजन पर लेख प्रासङ्गिक है। पं० पुलकशास्त्री एवं डॉ० अखिल जी वंसल के लेखों ने भी **जिनभाषित** को गौरव प्रदान किया है।

पं० सुनील 'संचय' जैनदर्शनाचार्य
श्रुत संवर्द्धन संस्थान प्रथमतल २४७
दिल्ली रोड, मेरठ (उ.प्र.)

मुझे कृपा करके '**जिनभाषित**' मासिक पत्रिका का दिसम्बर २००६ का अंक भेजने का कष्ट करें।

इस अंक का सम्पादकीय लेख एवं बेरिस्टर चम्पतराय एवं गाँधीजी के पारस्परिक पत्रों का विशेषरूप से अध्ययन करना चाहता हूँ, जो कि अद्वितीय हैं।

धन्यकुमार दिवाकर
द्वारा- दिवाकर कटपीस भण्डार
अमर टाकीज के सामने, सिवनी (म.प्र.)

'**जिनभाषित**' वर्ष ६ अंक १ जनवरी २००७ का सम्पादकीय '**समता-निःकांक्षिता में अनुत्तीर्ण गृहस्थ मुनि-डिग्री का पात्र नहीं।**' अच्छा लगा। शिथिलाचारी मुनियों को अपनी चर्या सुधारना चाहिए, ताकि दिगम्बरमुनिधर्म पूरी तरह से सुरक्षित रह सके। आज जो भी विद्वान् शिथिलाचार के सम्बन्ध में लिखता है, उसे समाज के कुछ लोग (जिन्हें आगम का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है) अच्छा नहीं कहते, जबकि वे स्वयं जानते हैं कि उन शिथिलाचारी मुनियों की चर्या मुनिधर्म के अनुकूल नहीं है। कुछ मुनि आत्म प्रचार में लिप्त दिखाई दे रहे हैं। कुछ व्यक्ति बिना बजह पंथवाद से ग्रसित होकर पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी जैसे महान् मुनियों की भी आचोलना करने से बाज नहीं आ रहे हैं, जो चिंता का विषय है। डॉ. सुरेन्द्र जैन, मंत्री अ.भा. दि. जैन विद्वत् परिषद ने '**चुप्पी तोड़ें विद्वान्**' लेख में निर्भीकता से विद्वानों और उनकी परिषदों की आलोचना करनेवालों को सटीक जबाब दिया है। यदि २५ विद्वान् एक-एक लेख भी लिखें, तो आलोचकों को भी समझ में आ जाये। निश्चयाभास-समर्थक तो मुनियों को लड़ाने में विश्वास रखते हैं। खेद है कि कुछ विद्वान् भी उनकी चालों में फँस रहे हैं। कुण्डलपुर का मंदिर तो आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज एवं उनके संघ के साधुओं को अप्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष रूप से निशाना बनानेवालों के लिए मुहरे के रूप में मिल गया है, जिसकी जितनी निन्दा की जाये, कम है। **जिनभाषित** में लेखकों का दायरा बढ़ाया जाये।

डॉ. नरेन्द्र जैन, सनावद

निःशुल्क प्रवेश

परम पूज्य आचार्य १०८ श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य पूज्य मुनि श्री प्रशांत सागर जी एवं निर्वेग सागर जी महाराज की प्रेरणा से धार्मिक नगरी बीना में श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन पाठशाला (छात्रावास सहित) शैक्षणिक वर्ष 2007-2008 के जुलाई माह से लम्बे अंतराल के बाद पुनः प्रारंभ की जा रही है। इसमें ८वीं बोर्ड एवं १०वीं बोर्ड परीक्षा पास वे ही छात्र प्रवेश पा सकेंगे जो स्थानीय शासकीय शाला में अपना अध्ययन जारी रखते हुए धार्मिक शिक्षा ग्रहण करना चाहेंगे। आवास, भोजन एवं शासकीय शाला में लगने वाला प्रवेश शुल्क, अध्ययन शुल्क संस्था द्वारा वहन किया जावेगा। स्थान सीमित है, अतः शीघ्र संपर्क करें।

संपर्क सूत्र - अध्यक्ष-अभय सिंघई, मो. 9425171138
मंत्री - विभव कोठिया 07580-223333
अधिष्ठाता - पं. निहालचंद जैन 07580-224044
प्राचार्य - पं. राजेश शास्त्री मो. 09993181136
श्री नाभिनन्दन दिगम्बर जैन हितोपदेशनी सभा,
बीना (सागर) म.प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

हाईकोर्ट का सवाल अल्पसंख्यक कौन ?

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने धार्मिक अल्पसंख्यक की मान्यता व अल्पसंख्यक परिभाषित करने के मानदंड संबंधी सवालों का हल ढूंढने के लिए भारत सरकार से संविधान लागू होते समय देश की कुल आबादी सहित अल्पसंख्यक समुदायों की जनसंख्या तथा २००१ की जनगणना में अल्पसंख्यकों की जनसंख्या का ब्योरा माँगा है। साथ ही अल्पसंख्यकों की खस्ता हालत बयान करने वाली सच्चर कमेटी की रिपोर्ट भी पेश करने का निर्देश दिया है।

न्यायालय ने इस बाबत राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के चेयरमैन को नोटिस जारी की है। भारत सरकार के गृह मंत्रालय एवं महानिदशेक जनगणना विभाग की तरफ से भारत के अपर सालीसिटर जनरल डॉ. अशोक निगम द्वारा नोटिस स्वीकार कर लेने के पश्चात् न्यायालय ने केन्द्र सरकार, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग व राज्य सरकार से जवाब तलब किया है और तत्संबंधी याचिका की अगली सुनवाई की तिथि २२ जनवरी तय की है।

यह आदेश जारी करते हुए न्यायमूर्ति एस.एन. श्रीवास्तव ने अंजुमन मदरसा नूरुल इस्लाम देहरा कैन गाजीपुर की प्रबंध समिति की याचिका खारिज कर दी। उल्लेखनीय है कि संविधान के अनुच्छेद २९ व ३० में अल्पसंख्यकों को विशेष संरक्षण देने का उल्लेख किया गया है किन्तु अल्पसंख्यक किसे माना जायेगा इसे पारिभाषित नहीं किया गया है।

कितनी फीसदी आबादी वाला समुदाय या लोगों का ग्रुप अल्पसंख्यक माना जायेगा। क्या ४९ फीसदी आबादी पर भी अल्पसंख्यक माना जायेगा? ऐसे ही कई सवाल उठ खड़े हुए हैं। न्यायालय ने अल्पसंख्यक की परिभाषा सहित इसकी मान्यता के मानदण्ड, राष्ट्रीय, प्रांतीय, मंडलीय स्तर पर इनकी पहचान क्या होगी? क्या देश की आबादी की ५ फीसदी जनसंख्या रखने वाले लोग अल्पसंख्यक माने जायेंगे, जैसे सवालों के जवाब आयोग और सरकार से माँगे हैं।

न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय के टी.एम.ए. पई फाउंडेशन व वाल पाटिल केस के हवाले से कहा है कि क्या ऐसा समुदाय या लोगों का ऐसा समूह है जिसके अधिकारों की अन्य बहुसंख्यक ग्रुप के लोगों से सुरक्षा करने की जरूरत है?

संविधान के अनुच्छेद २५ से ३० तक सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है। देश के बँटवारे के समय का सांप्रदायिक भय एवं असुरक्षा की भावना का अब अंत हो चुका है। अल्पसंख्यक के नाम पर संरक्षण देना क्या भारत में बहुराष्ट्रीयता के बीज का प्रदर्शन नहीं है?

ऐसे ही कई सवालों के जवाब तलाशने के लिए न्यायालय ने विभाजन से अब तक के जनसंख्या की स्थिति एवं जाति धर्म आधारित अल्पसंख्यक की गणना का ब्योरा माँगा है। इन सभी सवालों के जवाब पर बहस २२ जनवरी को होगी।

दैनिक जागरण, झाँसी
२१ दिसम्बर २००६ से साभार

उच्चतम न्यायालय द्वारा श्री केसरियाजी क्षेत्र जैन धर्मावलिम्बयों का होने का निर्णय

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांक ४ जनवरी २००७ में समस्त तथ्यों एवं राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय की विवेचना करते हुए कहा है कि श्री ऋषभदेव मन्दिर केसरियाजी अविवादितरूप से जैन धर्मावलिम्बयों का है और इस पर किसी अन्य धर्म का दावा बेबुनियाद है।

सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन सम्प्रदायों ने श्री केसरियाजी क्षेत्र अपना होने का दावा किया है। इस पर कोई निर्णय न देते हुए विधिसम्मतरूप से राजस्थान सरकार को ४ महीने के अन्दर तय करने का आदेश दिया है। राजस्थान उच्च न्यायालय ने जो दिशानिर्देश इस संबंध में दिए हैं, उनके आधार पर राजस्थान सरकार इसका निर्णय करेगी।

डॉ. विमल जैन

अनुमोदित प्रस्ताव

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ संरक्षिणी महासभा की आवश्यक बैठक दिनांक २० जनवरी २००७ को महासभा कार्यालय ६०९, भण्डारी हाऊस, ९१, नेहरू प्लेस, नई दिल्ली-११००१९ में सम्पन्न हुई। यह बैठक केसरियाजी केस में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के संदर्भ में हुई। सभी ने सुप्रीम कोर्ट के निर्णय, जिसमें निर्णित किया गया है कि यह मन्दिर अविवादितरूप से जैनों का है, इसका स्वागत किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केसरियाजी का यह प्राचीन मन्दिर दिगम्बर जैनों ने ही बनाया था तथा उन्हीं की परम्परा की प्राचीन मूर्तियाँ इस मन्दिर में विराजमान हैं। अनेक साक्ष्य एवं शिलालेख इसके दिगम्बर जैन मन्दिर होने की बात को प्रमाणित करते हैं। यह तथ्य कोर्ट के रिकॉर्डों एवं राजस्थान सरकार के दस्तावेजों से प्रमाणित है।

'श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ संरक्षिणी महासभा' राजस्थान सरकार से निवेदन करती है कि ऋषभदेवजी के इन मंदिरजी को दिगम्बर जैनों को शीघ्र से शीघ्र सौंपा जाये।

निर्मल कुमार जैन सेठी
अध्यक्ष, नई दिल्ली

श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार से सम्मानित पं. निहालचंद जैन

जैनधर्म दर्शन के सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं 'घर-घर चर्चा रहे धर्म की' के प्र. सम्पादक प्राचार्य पं. निहालचंद जैन बीना (म.प्र.) को राष्ट्रीय स्तर का श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार २००६, जैनपत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए परम पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के सान्निध्य में श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक महोत्सव ललितपुर (उ.प्र.) के शुभ अवसर पर १७ जनवरी २००७ को प्रदान किया गया।

श्री गुलाबचंद जी गंगवाल का निधन

प्रसिद्ध समाजसेवी एवं जैन समाज किशनगढ़ रेनवाल के शिखर पुरुष श्री गुलाबचन्दजी गंगवाल का ८६ वर्ष की आयु में दिनांक ३०.१२.०६ को देहावसान हो गया। आपकी धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यों में प्रवृत्ति प्रशंसनीय थी। आप निरंतर स्वाध्यायरत रहते थे। गूढ़ धार्मिक विषयों पर भी आपका गहरा चिंतन एवं मनन था और किसी भी जिज्ञासा का आप तत्काल समाधान करते थे। श्री दिगम्बर जैन औषधालय किशनगढ़ रेनवाल के तो आप मानो प्राण ही थे। आपके परिवारजनों द्वारा आपकी स्मृति स्वरूप तीन लाख रूपये की राशि दान में देने की घोषणा की जिसमें दो लाख रूपये तो श्री दिगम्बर जैन दातव्य औषधायल किशनगढ़ रेनवाल एवं एक लाख रूपये अन्य धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक संस्थाओं को दान दिया जावेगा। जैन समाज किशनगढ़ रेनवाल में इतनी बड़ी राशि दान में देनेवाला यह पहला परिवार है।

गुणसागर ठोलिया
मंत्री- श्री दिगम्बर जैन समाज किशनगढ़ रेनवाल

श्राविकारत्न श्रीमती गुणमाला देवी काला का स्वर्गवास

सुजानगढ़ (राजस्थान) निवासी एवं कोलकाता प्रवासी एवं कोलकाता महानगर के कई व्यापारिक संस्थानों, सामाजिक संस्थाओं के पदाधिकारी महानगर एवं सुजानगढ़ (राज.) के कई चैरेटेबिल संस्थाओं के ट्रस्टी एवं प्रसिद्ध उद्योगपति श्री मदनलालजी काला की धर्मपत्नी श्राविकारत्न दानशीला, मुनिभक्त एवं मूक समाजसेविका श्रीमती गुणमाला देवी काला का स्वर्गवास गत १ जनवरी २००७ को मध्य रात्रि में महानगर में हो गया। वात्सल्यमूर्ति श्रीमती काला के निधन पर महानगर की कई सामाजिक एवं धार्मिक संस्थाओं, तथा महानुभावों ने गहरा शोक प्रकट किया है।

देवेन्द्र कुमार जैन
अध्यक्ष, राजस्थान युवक संघ, कोलकाता

श्री जैनीलाल जी का देहावसान

श्री जैनीलाल जी का जन्म ११ फरवरी १९२२ को जगाधरी में हुआ। पितामह ला॰ केवलराम पिता ला॰ उग्रसेन तथा माता श्रीमती जानकी देवी जैन थीं। शिक्षा उपरान्त वह पारिवारिक व्यापार में लगे और स्वस्तिका मैटल वर्क्स, जगाधरी के नाम से धातु-बर्तन एवं शीट का बृहद् काम करते रहे।

वह एक प्रसिद्ध समाजसेवी थे। सभी स्थानीय संस्थाओं, जैसे हिन्दू कन्या पाठशाला, हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, भगवान् महावीर दिगम्बर जैन गर्ल्स विद्यालय, गौशाला तथा श्मशानघाट आदि अनेक संस्थाओं में विभिन्न पदों पर रहकर उनका कार्यभार सँभालते रहे।

जैन-समाज में भी उनका योगदान निरन्तर रहा। श्री दिगम्बर जैन केन्द्रीय महासमिति के संस्थापक सदस्य तथा हरियाणा अंचल के अध्यक्ष एवं परामर्शदाता रहे। उन्होंने केन्द्रीय कार्यकारिणी के सक्रिय सदस्य रहकर अनेक वर्षों तक समिति के कार्य में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

सुशीला जैन
१-जैन नगर, जगाधरी - १३५००३

विद्वत्परिषद् के चार मूर्धन्य विद्वानों को श्रद्धा सुमन

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए विगत् दो माह बहुत दुखद व्यतीत हुए जिनने हमारे बीच से श्रीमान् पं. दयाचंद्र जैन साहित्याचार्य, पं. पद्मचंद्र जैन शास्त्री, पं. खूबचंद्र जैन सिद्धांत शास्त्री एवं प्रो. डॉ. नंदलाल जैन को सदा-सदा के लिए छीन लिया। यह चारों ही विद्वान् जैन धर्म, दर्शन एवं साहित्य के अप्रतिम मनीषी थे, जिनके निधन से जैन धर्म और समाज की अपूरणीय क्षति हुई है। उक्त चारों विद्वानों का संक्षिप्त परचिय इस प्रकार है-

म.प्र. के पन्ना जिले के अजयगढ़ निवासी **पं. दयाचंद्र जैन साहित्याचार्य** सादगी पसंद इंसान थे। संस्कृत विद्या पर आपका अधिकार था। आपने अनेक साधुसंघों में अध्यापन कार्य किया तथा अनेक शिक्षण शिविरों में प्रशिक्षण प्रदान किया। आपकी दि. २५/१२/२००६ को ८८ वर्ष की आयु में पन्ना, म.प्र. निधन हो गया।

अनेकान्त शोध त्रैमासिक पत्रिका एवं वीर सेवा मन्दिर नई दिल्ली के पर्याय माने जाने वाले आगमनिष्ठ विद्वान् **पं. पद्मचंद जैन शास्त्री** अपनी स्पष्टवादिता और आगमिक लेखन के लिये प्रसिद्ध थे। उन्होंने अपने सम्पादकीय लेखों, समीक्षाओं और मूल जैन संस्कृति अपरिग्रह आदि कृतियों के माध्यम से समाज में ख्याति अर्जित की। वृद्धावस्था में भी उनकी अध्ययन और कार्य के प्रति लगन तथा प्रेरक विचारशीलता हर किसी को लुभाती थी। उनका दिनांक १ जनवरी, २००७ को नई दिल्ली में ९२ वर्ष की आयु में निधन हो गया।

बुन्देलखण्ड में पूज्य वर्णी जी की जैन धर्म ग्रहण भूमि तथा मन्दिरों एवं विद्वानों की नगरी मड़ावारा जिला ललितपुर, उ.प्र. में जन्मे **श्री पं. खूबचंद जैन सिद्धान्त शास्त्री** ने अध्ययनोपरांत अपने व्यवसाय के साथ ही नगर के बच्चों को जैन पाठशाला में अध्ययन कराना प्रारंभ किया और जैन धर्म और जैन संस्कारों का बीजारोपण किया। मुझे भी उनसे बालबोध एवं छहढाला आदि पढ़ने का सौभाग्य मिला। वे सादा जीवन उच्च विचार के प्रतीक थे। वे सहज श्रुत साधन कृति के लेखक थे। उनका दिनांक १४ जनवरी २००७ को ९७ वर्ष की आयु में मड़ावरा में निधन हो गया।

जैन जगत के मूर्धन्य विद्वान् **डॉ. नंद लाल जैन** का जन्म दिनांक १६, अप्रैल १९२६ को बड़ा शाहगढ़ (छतरपुर म.प्र.) में हुआ था। जैन दर्शन शास्त्री एवं रसायन विज्ञानी डॉ. जैन ने 'नंदन वन', 'आपका स्वागत है', 'ग्लॉसरी ऑफ कृषि जैन टर्म्स', 'सर्वोदयी जैन धर्म' आदि कृतियों का लेखन तथा धवला पुस्तक-१, राज वार्तिक अध्याय-२,५ व ८ का अंग्रेजी अनुवाद किया है। वर्तमान में वे वर्णी जीवन गाथा का अंग्रेजी में अनुवाद कर रहे थे। उन्होंने कुछ साधु संतों के ग्रन्थों का भी अंग्रेजी में अनुवाद किया था। जो अभी अप्रकाशित है।

उक्त चारों ही विद्वान् अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के वरिष्ठ सदस्य/संरक्षक थे। विद्वत्परिषद के लिए इनके निधन से गहरा सदमा लगा है। मैं सम्पूर्ण अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वतपरिषद् की ओर से इन दिवंगत आत्माओं के प्रति हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ तथा समस्त शोकाकुल परिवार जनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता हूँ।

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन
एल-६५, न्यू इन्दिरा नगर,
बुरहानपुर (म.प्र.)

पिसनहारी-मढ़िया के पर्वत पर श्रीपार्श्वनाथ मंदिर-निर्माण के ५० वर्ष

जबलपुर निवासी श्री दशरथ लाल जी (जन्म सन् १९२२) ने अपनी माँ की इच्छा को पूरा करने हेतु छोटे भाई ज्ञानचंद जी के सहयोग से पिसनहारी की मढ़िया के पर्वत पर जाते समय बायीं तरफ 'भगवान् पार्श्वनाथ' के एक विशाल कलात्मक मंदिर का निर्माण कराया। बसंत पंचमी दिनांक २३/१/०७ को इस मंदिर को निर्मित हुए पूरे ५० वर्ष हो गये। ५० वर्ष पुराने मंदिर के पुनर्निर्माण का कार्य श्री दशरथलाल जी के पुत्र, पुत्री, एवं श्री ज्ञानचंद जी के पुत्र श्री अशोक एवं श्री अभय करवा रहे हैं। श्री दशरथलाल जी आचार्य श्री विद्यासागर जी के परमभक्त थे। आप पिसनहारी मढ़िया के १८ वर्षों तक कोषाध्यक्ष रहे। सन् १९९६ ई. में आपने धर्मध्यानपूर्वक देहत्याग कर दिया।

सिंघई सुभाष जैन
ए/106, सागर केम्पस,
चूना भट्टी, भोपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर पद्मप्रभ एवं नमिनाथ के चिह्नकमलों में भिन्नता

प्रो. डॉ. अशोक जैन

तीर्थंकरों के जन्म के पश्चात् जब सौधर्म इन्द्र बालक को जन्माभिषेक हेतु पाण्डुक शिला पर विराजमान करते हैं, तब सौधर्म इन्द्र को बालक तीर्थंकर के पैर के अँगूठे में एक चिह्न दिखाई देता है, वही चिह्न उन तीर्थंकर का लांछन माना जाता है। इस प्रकार प्रत्येक तीर्थंकर का चिह्न अलग-अलग होता है। चिह्न पशु-पक्षियों से लेकर स्वस्तिक, कलश, शंख, वज्रदण्ड एवं चन्द्रमा आदि तक होते हैं। यदि पर्यावरण के दृष्टिकोण से आकलन करें, तो पाते हैं कि ये चिह्न हमारे वातावरण के जीवित एवं अजीवित दोनों प्रमुख अवयवों का प्रतिनिधित्व करते हैं। तीर्थंकरों के ये चिह्न मानव-जगत् को पर्यावरण के संरक्षण का उपदेश भी देते हैं कि जीवितों को अभय प्रदान करो एवं अजीवित वस्तुओं का आवश्यकता-नुसार एवं बुद्धि पूर्वक उपयोग करो।

वैसे तो लगभग सभी तीर्थंकरों के चिह्न अलग-अलग हैं एवं उन्हें पहिचानने में कोई कठिनाई नहीं आती है, परन्तु छठे तीर्थंकर भगवान् पद्मप्रभ एवं इक्कीसवे तीर्थंकर भगवान् नमिनाथ, दोनों के चिह्न क्रमशः श्वेतकमल एवं नीलकमल हैं। इन चिह्नों को जब भगवान् की मूर्ति के पादपीठ में अंकित किया जाता है, तब भिन्नता दिखाई नहीं देती है, क्योंकि मूर्तिकार दोनों प्रतिमाओं के नीचे एक जैसा ही कमल उकेर देते हैं। एक और कारण यह भी है कि पत्थर अथवा धातु पर रंगीन आकृति उकेरना संभव नहीं होता है। प्रस्तुत आलेख के लेखक ने इस लेख में दोनों प्रकार के कमल के फूलों में भिन्नता दर्शायी है एवं प्रतिमाओं पर विभिन्नतावाले चिह्नों को प्रदर्शित करने के लक्षण भी प्रस्तुत किये हैं।

श्वेत कमल - छठे तीर्थंकर भगवान् पद्मप्रभ का लांछन श्वेतकमल है। इस कमल का रंग गुलाबी अथवा हल्का पीला भी हो सकता है। संस्कृत में इसे अम्बुज अथवा अरविन्द भी कहा जाता है। लेटिन भाषा में इसे निलम्बो न्यूसीफेरा (Nelumbo nucifera) नाम दिया गया है, जो कि निलम्बोनेसी कुल का सदस्य है। अँग्रेजी भाषा में इसे इण्डियन लोटस अथवा चाईनीज वाटर लिली भी कहा जाता है।

श्वेत अथवा गुलाबी कमल एक जलीय, बहुवर्षीय एवं देहा-कुरधारी (स्टोलोनीफेरस) प्रकार का पौधा होता है। इसकी पत्तियाँ कुछ-कुछ गोलाकार अथवा हृदयकार होती है। पत्तियाँ पानी की सतह से ऊपर आ जाती हैं। पुष्प का बाहरी पुष्पदल कुछ सफेद-हरा एवं भीतरी पुष्पदल सफेद-गुलाबी, हल्का पीला अथवा पूर्ण रूप से सफेद होता है। पुष्प के मध्य में एक मांसल एवं डिस्क जैसी संरचना स्थित होती है, जिसे 'टोरस' (Torus) कहा जाता है।

नील कमल - इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान् नामिनाथ का चिह्न नीलकमल है। लेटिन भाषा में इसे निम्फिया नौचली कहा जाता है जो कि निम्फिएसी कुल का सदस्य है।

यह भी एक बहुवर्षीय, जलीय एवं शाकीय पौधा है। इसकी पत्तियाँ बर्तुलाकार, किनारों से चिकनी अथवा कभी-कभी लहरदार होती हैं। पत्तियों हमेशा पानी की सतह पर ही तैरती रहती हैं। पत्तियों की निचली सतह चिकनी होती है। इसके पुष्प नीले अथवा कभी-कभी बेंगनी रंग के होते हैं। इसके पुष्पों में पुंकेशर स्पष्ट एवं छोटे रेशेदार होते हैं। पंखुड़िया थोड़ी सँकरी एवं लम्बी होती हैं।

उक्त दोनों ही प्रकार के कमलों के कन्द एवं बीज खाद्य पदार्थ के रूप में उपयोग किये जाते हैं, जबकि जैनधर्म के अनुसार यह अभक्ष्यों की श्रेणी में रखे गये हैं। दोनों ही प्रकार के कमल सम्पूर्ण भारत के तालाबों में पाये जाते हैं। इनमें पुष्प मई माह से अक्टूबर माह तक आते हैं।

चिन्ह प्रदर्शित करने का तरीका - श्वेतकमल को चित्रांकन करने अथवा प्रतिमा के पाद में उकेरने के लिये पुष्पदल (पंखुड़ियों) को थोड़ा घना एवं चौड़ा बनाया जाना चाहिए एवं पुष्प के मध्य एक डिस्क जैसी संरचना (टोरस) बनाना चाहिये।

नीलकमल का पुष्पदल अर्थात् पंखुड़ियाँ आकार में सँकरी एवं थोड़ी लम्बी बनाना चाहिए। ये घनी भी कम होती हैं एवं पुष्प के मध्य में डिस्क (टोरस) का अभाव होता है।

इन दोनों प्रकार के कमलों के चित्र दायें पृष्ठ पर देखिए।

वानस्पतिकी विभाग जीवाजी विश्व विद्यालय,
१२, शीतल कॉलोनी बलवन्त नगर,
ग्वालियर म.प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर पद्मप्रभ का चिह्न : श्वेतकमल (लालिमायुक्त)

Nelumbo nucifera (Kamal)

तीर्थंकर नमिनाथ का चिह्न : नीलकमल

Nymphaea nouchali (Neel Kamal)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि नं. UPHIN/2006/16750

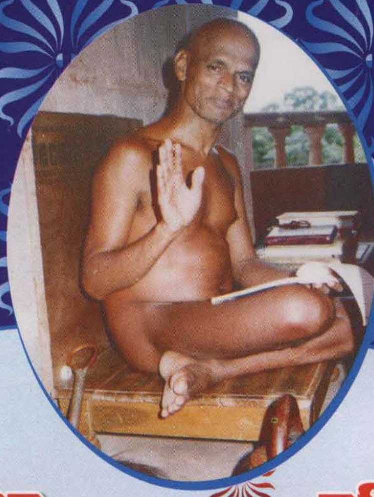

● मुनि श्री योगसागर जी

अरहनाथ स्तवन

(शार्दूल विक्रीडित)

1

है आश्चर्य अपूर्व जीवन कथा कैसे कहूँ शब्द में।
अर्हत मन्मथ चक्रवर्ती पद से शोभित थे लोक में॥
था वैराग्य अपूर्व सर्वस्व तज के निर्ग्रन्थ दीक्षा लिए।
ऐसे श्री अरहनाथ तीर्थंकर हमें सन्मार्ग-मार्तण्ड दें॥

2

कैसे अद्‌भुत भावना प्रगट ते स्वर्गीय लक्ष्मी तजे।
आस्था की महिमा अचिन्त्य लख के मोक्षार्थी आत्मा भजे॥
जो संसार स्वरूप को समझते वे गर्त में ना गिरे।
सारा वैभव नाशवान् पल में जो दुःख के रूप रे॥

3

बाह्याभ्यन्तर वीतराग झलके आदर्श सा रूप है।
धर्मों में जयवन्त तीर्थ तव है ये विश्व का धर्म है॥
ऐसा धर्म महान् ही सकल जो पापारि को जीतता।
ये है शस्त्र अमोघ मोह रिपु को जीवित ना छोड़ता॥

4

संसारी हम, आप के स्तवन से सम्यक्त्व हीरा मिले।
होता भीतर ज्ञानसूर्य उदयी मिथ्या-घटायें टलें॥
आत्मा तो भयमुक्त सा अनुभवे काषायिकी मन्दता।
दुश्चिन्ता मन में न उठती वैराग्य ही जागता॥

5

पूर्वोपार्जित पुण्य के उदय में बोधि मिली आपकी।
है पीयूष समान शान्ति मिलती वाञ्छा नहीं अन्य की॥
नाना आकुलता मिटें स्वयं ही पर्याय बुद्धि हटे।
ऐसा भाव उठे विशुद्ध निज में तेरी कृपा ना हटे॥

मल्लिनाथ स्तुति

(श्री छन्द)

1

बाल यतीन्द्रा मनहर काया।
ब्रह्म-स्वरूपा विजित-कषाया॥
विश्व कल्याणी परम विरागी।
बोध हमें दो हम सब रागी॥

2

इन्द्र निहारे सहस दृगों से।
तृप्ति न पायी इन नयनों से॥
सूरज चन्दा सब शर्माये।
उज्ज्वल ज्योत्स्ना अनुपमाये॥

3

जन्म लिया था जब मिथिला में।
पुष्पफलों से तरुवर झूमे॥
वैर तजे थे वनचर प्राणी।
चहूँ दिशा में मधुर सुवाणी॥

4

चन्द दिशों में तप बल जागा।
मोहपिशाचा डर कर भागा॥
अक्षयज्ञानी तिमिर नशा के।
दुःख निवारे भविक जनों के॥

5

सार्थक नामी प्रभु जिन मल्ली।
काम-विजेता अघमल धो ली॥
मंगलदायी पदकमलों में।
ध्यान लगा के स्वरस चखूँ मैं॥

प्रस्तुति - रतनचन्द्र जैन

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। **संपादक :** रतनचन्द्र जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org